TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_186318
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—556—13-7-71—4,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81 Accession No.

Author G46K

Title गिरिधरराय कृत कुण्डलिया

This book should be returned on or before the date last marked below.

॥ श्रीः ॥

कविराय गिरिधररायकृत

कुण्डलिया ।

नीति, वैराग्य, उपदेशादि विषय रोचन
कुंडलियोंमें वर्णित हैं ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष–"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्–प्रेस,

❀ बम्बई. ❀

संवत् १९९२, शके १८५७.

ED 1950
& L,

मुद्रक और प्रकाशक—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

मालिक—"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.

पुनर्मुद्रणादि सर्वाधिकार "श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालयाध्यक्षाधीन हैं ।

श्रीराममाहात्म्यम् ।

श्रीराम राम रामेति ये जपन्ति च सर्वदा ॥
तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भवत्येव न संशयः ॥ १ ॥

चैत्रमासे सिते पक्षे नवम्यां च पुनर्वसौ ॥
मध्याह्ने कर्कटे लग्ने जातो रामः स्वयं हरिः ॥ २ ॥

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ॥
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥ ३ ॥

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥
हनूमान् शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः ॥४॥
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत् ॥
शिलाभिस्तु प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः ॥ ५ ॥
अर्दयित्वा पुरीं लंकामभिवाद्य च मैथिलीम् ॥
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥ ६ ॥

गान

श्रीगणेशाय नमः ।

गिरिधररायकृत

कुण्डलिया ।

दोहा—एकरदन गजमुख वदन, सुमतिसदन गणराज ।
मूषकवाहन नाय शिर, पूजत आपन काज ॥

कुण्डलिया ।

जय जय श्रीवेंकटरमण, शेषाचल महराज ।
अष्ट सिद्धि नव निद्धिदा, भक्तन सारन काज ॥
भक्तन सारन काज करो दाया अपनी विभु ।
जन उपकारी काज आज श्रीगंगाविष्णु प्रभु ॥
गिरिधरकृत कुण्डलि ख्यात तुम्हरे पद नय नय ।
चंचल चतुर सुजान काज तुव पद करि जय जय ॥
जियबो मरिबो ये उभै नहिं है अपने हाथ ।
जानत हैं वे नन्दसुत विहँसत बछरुन साथ ॥
विहँसत बछरुन साथ चारि युगके रखवारे। इंद्रमान

जिन हरचो विपतिके काटनहारे ॥ कह गिरिधर कविराय ज्वाब शाहनसे करिबो । आछत सीताराम उमिरि अपनी भरि जीवो ॥ १ ॥ पुत्र प्राणते अधिक है चारिउ युग परिमान । सो दशरथ नृप परिहरेउ वचन न दीन्हो जान ॥ वचन न दीन्हो जान बडेकी बूझि बडाई । बात रहै सो काज और बरु सरबस जाई ॥ कह गिरिधर कविराय भये नृप दशरथ ऐसे । पुत्रप्राण परिहरे वचन परिहरे न ऐसे ॥ २ ॥ साईं बेटा बापके बिगरे भयो अकाज । हिरणाकश्यप कंसको गयउ दुहुनको राज ॥ गयउ दुहुनको राज बाप बेटामें बिगरी । दुश्मन दावागीर हँसे बहु मण्डलनगरी ॥ कह गिरिधर कविराय युगन याही चलि आई । पिता पुत्रके वैर नफा कहु कौने पाई ॥ ३ ॥ बेटा बिगरो बापसों करि तिरियनको नेहु । लटापटी होनेलगी मोहि जुदा करिदेहु ॥ मोहि जुदा करिदेहु घरेमा माया मेरी । लेहौं घर

अरु द्वार करौं मैं फजिहत तेरी ॥ कह गिरिधर कविराय सुनो गदहाके लेटा । समय परचो है आय बापसे झगरत बेटा ॥ ४ ॥ रही न रानी कैकयी अमर भई यह बात । कवन पूर्वले पापते वन पठयो जगतात ॥ वन पठयो जगतात कन्त सुरलोक सिधारेउ । जेहिसुत काजे मरेउ राउ नहिं वदन निहारेउ ॥ कह गिरिधर कविराय भई यह अकथ कहानी । यश अपयश रहिगयउ रही नहिं केकयिरानी ॥५॥साईं ऐसे पुत्रसे बांझ रहै बरु नारि । बिगरी बेटे बापसे जाय रहे ससुरारि ॥ जाय रहे ससुरारि नारिके नाम बिकाने । कुलके धर्म नशाय और परिवार नशाने ॥ कह गिरिधर कविराय मातु झंकखै वहिं ठाईं । असिपुत्रनिनहिं होय बांझ रहतिउँ बरु साईं॥६॥नारी अतिबल होतहै अपनो कुलको नाश। कौरव पांडव वंशको कियो द्रौपदी नाश ॥ कियो द्रौपदी नाश कैकयी दशरथ मारेउ । राम

लषणसे पुत्र तेऊ वनवास सिधारेऊ॥कह गिरिधर कविराय सदा नर रहेदुखारी।सोघर सत्यानाशजहां है अतिबल नारी ॥७॥ मक्करवाली नारिको मारा ना मिमिआइ । सरिता बोलै मोरसों जियत भुवंगै खाइ ॥ जियत भुवंगैखाइ मुनिनके जिय तरसावैं । कौतुक अपना करै कुँवरिके अंक लगावै ॥ कह गिरिधर कविराय जैसि खांडेकी धारा। देखै हृदय विचारि नारि यह बडी मकारा ॥८॥ नारी परघर जाइ अरे यह भला न मानै। जो घर रहै निदान चाल भाषा पहिचानै॥ भाषा चाल पहिचानि बहुरि उतपात न होई। जो कुछ लागै दोष अरे सुन आवै रोई॥कह गिरिधर कविराय समयपर देत हैं बारी। मरा पुरुष जियजान जबै पर घरगईनारी॥९॥काँची रोटी कुचकुची परती माछी बार। फूहर वही सराहिये परसत टपकै लार॥ परसत टपकै लार झपटि लरिका सौंचावै । चूतर

दिये बनि आवै सांई ॥१६॥ बैरी बँधुवा बानियां ज्वारी चोर लबार।बटपारी रोगीऋणीनगरनारिको यार ॥ नगरनारको यार भूलि परतीति न कीजै। सौ सौगंदै खाइ चित्तमें एक न दीजै॥कह गिरिधर कविराय घरै आवै अनगैरी। मुँहसे कहै बनाय चित्तमें पूरो वैरी ॥१७॥ बनिया अपने बापको ठगत न लावै बार।निशिवासर जननी ठगै जहाँ लेत अवतार॥जहां लेत अवतार मास दश उदरों राखै। गुरुसे करै विवाद आप पण्डित ह्वै भाखै॥ कह गिरिधर कविराय बेंचै हरदी औ धनियां। मित्र जानि ठगि लेहि जहांलग भक्ताबनियां॥१८॥ आटामें आटा घटै घटै दालमें दार।कबहुँक घटिहै घीवमहँ हमसे ह्वैहै रार ॥ हमसे ह्वैहै रार मारि जूतिन जी लेहौं।जानैं सकल जहान दाम एकौ ना देहौं ॥ कह गिरिधर कविराय बैठिहौं तुम्हरे घाटा।पनहिनमूडठठैहौंजोकहुँघटिहैआटा ॥१९॥

झूंठ मीठे वचन कहि ऋण उधार ले जाय ।
लेत परमसुख ऊपजै लैके दियो न जाय ॥ लैके
दियो न जाय ऊंच अरु नीच बतावै।ऋणउधारके
रीति मांगतै मारन धावै ॥ कह गिरिधर कविराय
जानिरहै मनमें रूठा । बहुत दिना ह्वै जाय कहैतेरो
कागज झूठा॥२०॥सोना लादन पिव गये सूना
करिगये देश।सोना मिले न पिव मिले रूपा ह्वैगे
केश॥रूपा ह्वैगे केश रोय रँगरूप गँवावा।सेजन-
को विश्राम पिया बिन कबहुँ न पावा । कह गिरि-
धर कविराय लोन बिन सबै अलोना । बहुरि
पिया घर आव कहा करिहौं लै सोना ॥ २१ ॥
मोती लादन पिवगये धुरपटना गुजरात । मोती
मिले न पिव मिले युग भरि बीती रात॥युगभरि
बीती रात विरहिनी आनि सतावै । चौंकि
परी ब्रजनारि पियाको लिखो न आवै॥ कहगिरि-
धर कविराय गोपिका यहकह रोती । आगिलगै

वह देश जहां उपजतिहै मोती ॥२२॥जाकी धन धरती हरी ताहि न लीजै संग।जो चाहै लेतोबनै तो करिडारु निपंग॥तोकरि डारु निपंग भूलिपर-तीति न कीजै। सौसौगन्दैखाय चित्तमेंएकनदीजै॥ कह गिरिधर कविराय कबहुँ विश्वास न वाको।रिपु समान परिहरिय हरिय धन धरती जाको॥२३॥ सांई सत्य न जानिये खेलि शत्रु सँग सार। दांव परे मतिचूकिये तुरत डारिये मार। तुरत डारिये मार नरद कच्ची करि दीजै। कच्ची होय तो होय मारि जगमें यश लीजै॥कह गिरिधर कविराय युगन या ही चलिजाई।कितनो मिलै अघाय शत्रुको मारिय सांई ॥२४॥ नदी न छोडिये तीरसों जो वरषासर साइ। बाढि बाढि दिन चारिको अपयश जन्म नशाइ॥अपयश जन्मनशाइ वही पाहनकी रेखा। बडी बडाई लहत सदा हम कबहुँ न देखा॥ कह गिरिधर कविराय नेक नेकी नहिं छोडा।बदीकिये

का होय नदीको तीर न छोडा ॥२५॥ दौलतपाइन कीजिये सपनेमें अभिमान।चंचलजल दिन चारि को ठाउँ न रहत निदान ॥ ठाउँ न रहत निदान जियत जगमें यश लीजै। मीठे वचन सुनायविनय सबहीकी कीजै॥कह गिरिधर कविराय अरे यह सब घट तौलत।पाहुन निशिदिन चारि रहत सबही के दौलत॥२६॥गुणके गाहक सहस नर बिनु गुण लहै न कोय।जैसे कागाकोकिला शब्द सुनै सबको-य ॥ शब्द सुनै सबकोय कोकिला सबै सुहावन। दोऊको यह रंग काग सब भये अपावन॥कह गिरि-धर कविराय सुनोहो ठाकुर मनके।बिन गुण लहै न कोइ सहस नर गाहक गुणके॥२७॥मित्र बिछोहा अतिकठिन मति दीजै करतार।वाके गुण जब चित चढैं वर्षत नयन अपार ॥ वर्षत नयन अपार मेघ सावन झरिलाई।अब बिछुरे कब मिलो कहो कैसी बनिआई ॥ कहगिरिधर कविराय सुनो हो

विनती एहा।हे करतार दयालु देवजनिमित्रबिछोहा ॥२८॥साईं तहां न जाइये जहां न आप सोधाय। बरन विषे जानै नहीं गदहा दाखें खाय॥गदहा दाखें खाय गऊपर दृष्टि लगावै। सभा बैठि मुसक्याय यही सब नृपको भावै ॥ कह गिरिधर कविराय सुनो रे मेरे भाई। तहां न करिये बास तुर्त उठि आइय सांई ॥ २९ ॥ गया पिंड जो देइ पितरको अपने तारै। करज बाप कर देइ लटे परिवार सँभारै॥हरी भूमि गहिं लेइ द्रवन शिर खड्ग बजावै। पर उपकारज करै पुरुषमें शोभा पावै॥सोई वंश सराहिये तल वैरी सब दलमलै। यतनौ काम जो न करै तो पुत्र खेह कन्या भलै॥३०॥सिंहिनि सिखवत सिंहकहँ पिय बेडा परै सँभार। जेहि हाथै हाथी हन्यौ तेहि मेंढक जनि मार॥तेहि मेंढक जनि मार कुलहि जनि दोष लगावै। बरुफाका करि मरै जगतमें शोभा पावै ॥ कह गिरिधर कविराय

हँसै जम्बुक औ दिंगिनि । समय परेकी बात सिंहका सिखवै सिंहिनि ॥३१॥ हिरना बिरझेउ सिंहसे औ झरुखुरी चलाय।झारखण्ड झीना परचो सिंहा चलोपराय॥सिंहा चलो परायसमयसमरत्थ विचारी । कलिहि कालमा लाइ हँसेहँसि के पगधारी॥ कह गिरिधर कविराय सुनोहो मेरे अरना । आजु गई करिजाय सकारे मैं की हरना ॥३२॥ बगुला झपटचो बाजपर बाज रह्यउ शिर नाय । दै अँधियारी पगु बंध्योचेटक दै फहराय॥ चेटक दै फहराय धनी बिनु कौन चलावे।गरे सांकरी डार करै जो जो मनभावै॥कह गिरिधर कविराय सुनो पश्चिमके नकुला । समया पलटे आय बाजपर झपटत बगुला ॥ ३३ ॥ फुदकी फुदकत बाजपर बाज रहतहै लाज।बहुत दिननमें गमन करि त्वहिं मारतहौं आज॥त्वहिं मारतहौं आज बाज टरि जाउ यहांसे । जबमैं करिहौं कोप तबै तुम बचौ

कहांसे ॥ कह गिरिधर कविराय बाजपर उलरइ धुधकी । समय परेकी बात बाजकहँ धिरवैफुदकी ॥३४॥पाता बडबड देखिकै चढे कमंठो धाय।तरु वर होयतौ भारसह टूटे रँड अरराय॥टूटे रँडअरराय जाय अंतहि ह्वैफूली।बतियां गई लोभायकहा धौं मारग भूली॥कह गिरिधरकविराय यहै नीचनकी बाता।अबनजाउँ वहि ठाउँ देखिकै बडबड पाता॥३५॥सांई सब संसारमें मतलबको व्यवहारजबलगि पैसा गांठमें तबलग ताको यार॥तबलग ताको यार संगहीसँगमें डोलै । पैसा रहा न पास यार मुखसे नहिं बोलै ॥ कह गिरिधर कविराय जगत यहि लेखा भाई । बिनु बेगरजी प्रीति यार बिरला कोइ सांई॥३६॥दादुरकेर दरेरपर लै फणपति निजशीश । समय आपनो जानिकै मन हि न लायो रीश॥मनहिं न लायो रीश शीशपर बोल्यो भाई । परयो आपदा आयलाज पति सबै

गँवाई॥कह गिरिधर कविराय कहां लै आनी आदुर।गुणकी मति घटि गई शीशपर बोलै दादुर ॥३७॥केंचुवा नागिनिसे कहै सुनलो हेतु हमार। हम तुमसे अस रीति है लाख भांति व्यवहार॥लाख भांति व्यवहार व्याहसावनमें कीजै।क्वारचैतको घाम कटक दल हमरो छीजै॥कह गिरिधर कविराय कहांसे आये हेतुवा । शेषनाग मरि जाय नागिनिहिं व्याहै केचुवा॥३८॥ कोईभँवर गुलाब तजि गये जो हुरहुरपास। घरिक समान अबार है करकस आई बास ॥ करकस आई बास आक पासहुसे भागे । अपने मन पछिताय फेर वाही सँग लागे॥कह गिरिधर कविराय कुमति अस फजिहत होई।जोइ बड़ेनको छोडि नीच घर आवै सोई ॥ ३९॥भँवर भेटेया चाहु जनि कांट बहुत रस थोर । आश न पूजै बासरा तासों प्रीति न जोर ॥ तासों प्रीति न जोर तोर कुल कमल सँघा-

ती।पपिहा रटै पियास बुंदजल आवै स्वाती॥कह
गिरिधर कविराय बैठु परमलकी छैयां । बरु मरु
जिय तरसाइ जाहु जनि भँवर भटैयां ॥ ४० ॥
दोहा—भौंरा वा दिनकठिन है,दुखसुखसहै शरीर।
जबलगि फूले केतकी, तबलगि बैठु करीर॥४१॥
कुंडलिया॥हीरा अपनी खानिको बारबार पछि-
ताय।गुण कीमत जानै नहीं तहां बिकानो आय॥
तहां बिकानो आय छेदकरि कटिमें बांध्यो । बिन
हरदी बिन लोन मांस ज्यों फूहर रांध्यो ॥ कह
गिरिधर कविराय कहां लगि धरिये धीरा । गुण-
कीमत घटिगई यहै कहि रोयो हीरा॥४२॥रहिये
लटपट काटि दिन बरु घामेमा सोय । छाँह न
वाकी बैठिये जो तरु पतरो होय॥ जो तरुपतरो
होयएक दिन धोखा देहै । जा दिन बहै बयारिटूटि
तब जरसे जैहै ॥ कह गिरिधर कविराय छांह
मोटकी गहिये । पाता सब झारिजाय तऊ छाहैं-

मा रहिये ॥४३ ॥ पीवे नीर न सरवरौ बूंदस्वा-
तिकी आस । केहरि तृण नहिं चारि सकै जो
व्रत करै पचास॥ जो व्रत करै पचास विपुल गज
युत्थ विदारै । सुपुरुष तजै न धीर जीव बरु
कोऊ मारै ॥ कह गिरिधर कविराय जीव जोधक
भरि जीवै। चातक बरु मरिजाय नीर सरवरनहिं
पीवै ॥४४॥ हंसा हियँ रहिये नहीं सरवर गये
सुखाय। कालिह हमारी पीठपै बगुला धरिहैं पांय॥
बगुला धरिहैं पांय इहां आदर नहिं ह्वैहै । जगत
हँसाई होय बहुरि मनमें पछितैहै ॥ कह गिरि-
धर कविराय दिनै दिन बाढै संसा । याहूसे घटि
जाय तबै का करिहै हंसा॥४५॥ हंसा उडि दिशि-
कहँ चले सरवर मीत जुहार । हम तुम कबहूं
भेटि हैं संदेशन व्यवहार ॥ संदेशन व्यवहार
सदा जल पूरण रहियो । सुख सम्पति धनराज्य
सदा चिरजीवत रहियो॥ कह गिरिधर कविराय

कीरकी रही न मंसा।दै अशीश उडि चले देश अपनेको हंसा॥४६॥सैयां भये तिलंगवा बौहर चली नहाय। देखि डरी कप्तानकहँ कौन जनारो आय॥ कौन जनारो आय काह दँहु पहिरे बाटै।बिन गुनाह तक्सीर सैयांको ठाढे डाटे॥कह गिरिधर कविराय नवै जस बन्दरभल्ला।तोसदान बन्दूक हाथमें पत्थरकल्ला॥४७॥ साईं जगमें योगकरि मुक्ति न जानै कोय। जब नारी गवने चली चढी पालकी रोय॥ चढी पालकी रोय जान नहिं कोई जीकी।रही सुरति तनछाय सुछतिया अपने हियकी॥कह गिरिधरकविराय अरे जनि होहु अनारी।मुँहसे कहै बनाय पेटमें विनवै नारी॥४८॥ दोहा—नव नारि रोवै नहीं, कहै पुकारि पुकारि। जस प्रिय तुम हमसन करी, वैसे करब प्रचारि॥ ४९॥

कुण्डलिया॥गढपतियनको धर्म्म है करै द्वउनको ध्यान। जिमी दोज रैनी करे मनको राखो ज्यान॥

मनका राखो ज्यान किलेपर तोप चढाओ।कोस को-
सको गिरद काटि मैदान कराओ॥कहगिरिधर क-
विराय राज राजनके साईं । अस गढपति जो होइ
ताहिको जंग नसाई॥५०॥नारा कहै नदीनसन हम
तुम एक समान।कछु हम तुमसन अधिक हैं अधि-
क हमारो मान॥अधिक हमारो मान ताहि तब बर-
षा आये । बरसे नीर झराझर मनइ उबार न पाये ॥
कह गिरिधर कविराय सुनोहो भाई पारा । समय
परेकी बात नदीकहँ सिखवै नारा॥५१॥चुगुल न
चूकै कबहुँको अरु चूकै सब कोय।बरकन्दाज कमा-
निया चूक उनहुँसे होय॥चूक उनहुँसे होय जे बांधैं
बरछी गुल्ला।चूक उनहुँसे होइ पढै पंडित औ मुल्ला॥
कह गिरिधर कविराय कलाहूते नट चूकै । चुगुल
चौकसीदार ससुर कबहूं नहिं चूकै॥५२॥मूसा कहै
बिलारसों सुन रे झूठ झुठैल। हम निकसतहैं सैरको
तुम बैठत हौ गैल ॥ तुम बैठत हौ गैल क-

पोंछै हाथ दोउ कर शिर खजुवावै॥कह गिरिधर कविराय फुहरके याही धैना। कजरौटा नहिं होइ लुकाठै आंजै नैना॥१०॥चिन्ता ज्वाल शरीरकी दाह लगै न बुझाय।प्रगट धुवां नहिं देखिये उर अन्तर धुँधुवाय॥ उर अन्तर धुँधुवाय जरै जस कांचकी भट्टी। रक्तमांस जरिजाइ रहै पांजरिकी टट्टी॥कह गिरिधर कविराय सुनो रे मेरे मिन्ता। वे नर कैसेजियैं जाहिव्यापीहै चिन्ता॥११॥साईं पुर ज्वाला उठो आसमानको धाय।अन्धहि पंगुहि छोडिकै पुरजन चले पराय॥ पुरजन चले पराय अन्ध यक मंत्र विचारो। पंगुहि लीन्हे कन्ध पीठ वाके पगु धारो॥कह गिरिधर कविराय सुमतिऐसी चलि आई। विना सुमतिको रंक पंक रावण भे साईं॥ १२॥ दाडिमके धोखे गयो सुवा नारियलखान। खान न पायो नेक कछु फिर लागो पछितान॥ फिर लागो पछितान बुद्धि अपनीको

रोवा।निर्गुणियनके साथ बैठि अपनो गुण खोवा ॥ कह गिरिधर कविराय सुनो हो मोरे नोखे। गयो झटाका टूटि चोंच दाडिमके धोखे॥१३॥सोरठा—शुकने कह्यो सँदेश,सेमरके पग लागि हौं।पग न परै वहि देश,जब सुधि आवै फलनकी ॥१४॥

कुण्डलिया ।

भूलो चातक आइकै घटा धुवाँको देखि।यह जानी जस जलज है बादर श्याम विशेखि॥बादर श्याम विशेखि देखि तोताको धायो। एक दिन संकट परे कौन काके घर आयो॥कह गिरिधरकविराय धुवाँको यह फल पायो। जो जलको तूगयो सोइ नयनन जल आयो॥१५॥साईं वैर न कीजिये गुरु पण्डित कवियार। बेटा वनिता पँवरिया यज्ञ करावनहार॥यज्ञ करावनहार राजमंत्री जो होई। विप्रपरोसी वैद्य आपको तपै रसोई॥कह गिरिधर कविराय युगनते यह चलि आई। इन तेरहसों तरह

चरि धक्कनसों जैहौ । तुमहौ निपट गरीब कहा घर बैठे खैहौ ॥ कह गिरिधर कविराय बात सुनिये हो हूसा । बाउ दिननका फेर बिलारिहि सिखवै मूसा॥५३॥ कौवा कहे मरालसे कहा जाति कह गोत । तुम ऐसे बदरूपिया कहीं न जगमें होत॥कहूं न जगमें होत महामैलेमलखाना । बैठि कचहरी जाय वेद मर्याद न जाना॥कह गिरिधर कविराय सुनौहो पंछी हौवा । धन्य मुल्क यह देश जहांके राजा कौवा ॥ ५४ ॥ माकरि गिरगिटसे कहै का मारतहौ सान । जो तुम्हरे हिरदैनमहँ सो हमहूं अब जान ॥ सों हमहूं अब जान करब हम घनके जाला।जहाँ न तुम्हरी डीठि तहाँ अब हमरो जाला॥ कह गिरिधर कविराय बात सुनिये हो धाकर।लगै चपेटा मोर तहाँ नहिं तहवाँ माकर ॥५५॥नयनालगनअपारहै पट अटपटह्वैजाय । गुन गरुवातम शीलता धीरज धर्मनशाय॥धीरजधर्म

नशाय फेर वाही सँग छूटै।छिनकबुद्धि होजाय फेर वाही सँग जूटै॥कह गिरिधर कविराय सुनोहोमोरे भयना । कठिनप्रीतिकीरीति जहां लागैं दुइ नयना ॥५६॥नयनाकी नोकैं बुरी निकलजात जस तीर। हेरे घाव न पाइये बेधा सकल शरीर॥बेधा सकल शरीर वैद का करै बैदाई।करिहौ कोटि उपाय घाउ नहिं देत दिखाई॥कह गिरिधर कविराय बिरहनी देत है चोंके।समुझि बूझिके चलो बुरी नयननकी नोकें ॥५७॥ प्रीति कीजिये बडेनसों समया लावै पार । कायर कूर कुपूत हैं बोरि देत मँझधार ॥ बोरिदेत मँझधार भीतिकी कवन बडाई । पछिताने फिरि देहिंजगतमें अपयश पाई॥कहगिरिधरकविराय प्रीति सांची सिखि लीजै।व्यवहारी जो होय तऊ तन मन धन दीजै॥५८॥ साईं घोडे अछतही गदहन आयो राज।कौआलीजैहाथमें दूरि कीजिये बाज॥दूरिकीजियेबाजराज पुनि एसोआयो । सिंह

कीजिये कैद स्यार गजराज चढायो॥कह गिरिधर कविराय जहां यह बूझि बडाई।तहां न कीजै भोर सांझ उठि चलिये सांई॥५९॥ सांई अवसरके पडे कौन सहै दुखद्वन्द । जाय बिकाने डोमघर वे राजा हरिचन्द॥वे राजा हरिचन्द करैं मरघट रखवारी । फिरेतपस्वीभेष फिरे अर्जुन बलधारी॥ कह गिरिधर कविराय तपै वह भीम रसोई । को न करै घटि काम परे अवसरके सोई॥६०॥कुसमयचले विदेश कहँ काची लादि कुम्हार । बरषाऋतु वैरिनि भई बादर कीन्हों मार ॥ बादर कीन्हों मार इतै उत कछु नहिं सूझै। भरिगईं ताल तलैयानदी औ सामुद्र को बूझै॥कह गिरिधर कविराय चलेपहुँचे दिनदशमा। चला करम लै बांधि चलैका अपनी वशमा ॥६१॥पपिहात्वहिकामारिहौं छोड देहु मम गांव। अर्द्धरातको बोलते लैलै पिउको नांव ॥ लैलै पिउको नांव ठांव हमरो नहिं छोडै।कठिनतुम्हारो बोल

जाइ हिरदैमें शूलै ॥ कह गिरिधर कविराय सुनो हो निर्दय पपिहा । नेकु रहनदे मोहिं चोंच मूंदे रहु घटिहा ॥ ६२ ॥ करै कियारि कपूरकी मृगमद बरहा बन्ध । सींचै केवरा गुलाबसे लहसुन तजै न गन्ध॥लहसुन तजै न गन्ध रुद्र अगरा संयूता । कबहुँ अहै गजराज कबहुँ शूकरके पूता॥कह गिरिधर कविराय वेद भाषैं यह सारी।बीजबयो सो होय कहा करै उत्तम क्यारी ॥६३॥ लंकापति तुमसे गई ज्यों वसन्तद्रुमपात । सुमति बिभीषण जबदई तब तुम मारी लात॥तब तुममारीलातभागितबहींते आयउ । मिल्यो राम दल जाइ काज धौं केतिक सारचउ ॥ कह गिरिधर कविराय रामजिय बाढी शंका । तपै बिभीषण राज अरे पति छूटी लंका ॥६४॥बडे बडेनकी ऐसि ही बडेन बडाई होय । हनूमान जब गिरिधरेउ गिरिधर कहत न कोय॥ गिरिधर कहत न कोय ताको किनका हरि धरेऊ।

गिरिधर गिरिधर होय कहत सबको दुख हरेऊ॥ कह गिरिधरकविराय सुनोहो ज्ञानी भाई । थोरेमें यश होय यशी पुरुषको साईं ॥६५॥ साईं इन न विरोधिये छोट बडो सब भाय ।ऐसे भारी वृक्ष-को कुल्हरी देत गिराय ॥ कुल्हरी देत गिराय मा-रके जमीं गिराई । टूकटूकके काटि सिन्धुमें देत बहाई ॥ कह गिरिधर कविराय फूट जेहिके घर जाई । हरणाकश्यप कंस गये बलि रावण भाई ॥६६॥ लाठीमें गुण बहुत हैं सदा राखिये संग । गहिरि नदी नारा जहाँ तहाँ बचावै अंग ॥ तहां बचावै अंग झपटि कुत्ताकहँ मारै । दुश्मन दावा-गीर होय तिनहूंको झारै ॥ कह गिरिधर कविराय सुनो हो धूरके बाठी । सब हथियारन छांडि हाथ-महँ लीजै लाठी ॥ ६७ ॥ कमरी थोरे दामकी आवै बहुतै काम । खासा मलमल बाफता उनकर राखै मान ॥ उनकर राखै मान बुन्द जहँ आडे

आवै । बकुचा बांधै मोट रातको झारि बिछावै॥ कह गिरिधरकविराय मिलति है थोरे दमरी।सब दिन राखै साथ बडी मर्यादा कमरी ॥ ६८ ॥ जुगुनू बोलै सूर्यसों तू हम बिन अँधियार । दिनके ठाकुर तुम भये रातके हम कोतवार ॥ रातके हम कोतवार जुगुनु अस नाम हमारो।तुम आकाशमें रहौ हमारो पृथ्वी द्वारो॥ कह गिरिधर कविराय सुनो हो मनके मगनू।ऐंडि ऐंडिबतलाहि सूर्यके सन्मुख जुगुनू॥६९॥विना विचारे जो करै सो पीछे पछिताय। काम बिगारै आपनो जगमें होत हँसाय ॥ जगमें होत हँसाय चित्तमें चैन न पावै।खानपानसन्मान राग रँग मनहिं न भावै ॥ कह गिरिधर कविराय दुःख कछु टरत न टारे। खटकत है जियमाहिं कियो जो विना विचारे ॥ ७० ॥ बीती ताहि बिसारिदे आगेकी सुधि लेइ। जो बनि आवै सहजमें ताहीमें चित देइ ॥

ताहीमें चित देइ बात जोई बनिआवै। दुर्जन हँसे न कोय चित्तमें खता न पावै॥कह गिरिधर होइ कविराय यहै करु मन परतीती । आगेको सुख होय समुझु बीती सो बीती॥ ७१ ॥ साईं अपने चित्तकी भूलि न कहिये कोइ । तबलग मनमें राखिये जबलग कारज होइ ॥ जबलगकारज होइ भूलि कबहूं नहिं कहिये। दुर्जन हँसे न कोय आप सियरे ह्वैरहिये॥ कह गिरिधर कविराय बात चतुरनके ताईं । करतूती कहि देति आप कहिये नहिं साईं ॥ ७२ ॥ साईं अपने भ्रात-को कबहुं न दीजै त्रास । पलक दूर नहिं कीजि-यै सदा राखिये पास ॥ सदा राखिये पास त्रास कबहूं नहिं दीजै। त्रासदियो लंकेश ताहिकी गति सुनि लीजै॥कह गिरिधर कविराय रामसोंमिलि-यो जाई । पाय विभीषण राज्य लंकपति बाज्यो साईं ॥ ७३ ॥ सांई नदी समुद्रको मिली बडप्पन

जानि। जाति नाश भौ मिलतही म
हानि ॥ मान महतकी हानि कहो
कीजै। जल खारी ह्वै गयो ताहिकहौ वे
कह गिरिधर कविराय कच्छ-मच्छै स
बडी फजीहत होय तबौ नदियनकी साईं ॥७४
सांई सन औ दुष्टजन इनको यहै सुभाव। खाल
खिंचावै आपनी परबन्धनके दांव ॥ परबन्धनके
दांव खाल अपनी खिंचवावै। मूड काटिकै फवै
तऊ वह बाज न आवै ॥ कह गिरिधर कविराय
करै अपनी कुटलाई। जलमें परि सरगये तऊ
छांडी न खुटाई ॥ ७५ ॥ सांई समय न
चूकिये यथा शक्ति सन्मान। का जानै को आइहै
तेरी पौरि प्रमान ॥ तेरी पौरि प्रमान समय
असमय तकि आवै। ताको तू मन खोलि
अंक भरि हृदय लगावै ॥ कह गिरिधर कविरा-
य सबै यामें सधिआई। शीतलजल फल फूलसम-

य जनि चूको सांई ॥ ७६ ॥ सांई ऐसी हरि करी बलिके द्वारे जाय।पहिलेहाथ पसारिके बहुरि पसारे पांय ॥ बहुरि पसारे पाँय मतो राजाने बतायो । भूमि सबैहरिलई बाँधिपाताल पठायो ॥ कह गिरिधर कविराय राउ राजनके ताईं । छल बल करि प्रभु मिले ताहिको तिष्ठै सांई ॥७७॥सांई अगर उजारिमें जरत महा पछिताय । गुणगाहक कोऊ नहीं जाहिसुवाससुहाय ॥ जाहि सुवास सुहाय सून वन कोऊ नाहीं । कै गीदर कै हिरन सोतौ कछु जानत नाहीं ॥ कहगिरिधर कविराय बडा दुख यहै गुसाँई । अगर आककी राख भई मिलि एकै साँई ॥ ७८ ॥ साँई हंस न आवहीं बिनु जल सरवरपास । निर्जल सरवरते डरै पक्षी पथिक उदास ॥ पक्षी पथिक उदास छाँह विश्राम न पावे । जहाँ न प्रफुलित कमल भँवर तहँ भूलि न आवे॥ कह गिरि-

धर कविराय जहाँ यह बूझि बडाई।तहाँ न करिये साँझ प्रातही चलिये साँई ॥ ७९ ॥ नयना जब परवश भये उत्तम गुण सब जायँ । वे फिर फिरि चोरी करैं ये फिरिफिरि लपटायँ ॥ ये फिरि फिरि लपटायँ नेत्र बहुरैं भरि आवैं । खान पान तकत्याग रात दिनहीं दुख पावैं ॥ कह गिरिधर कविराय सुनो तुम श्रवणनि बैनाँ । लोग देइँ अकलंक परैं जब परवश नैना ॥८०॥ साई सुमन पलाश पर सुवा रह्यो जोआय।लालकलीसी चोंचपर मधुकर बैठो जाय॥ मधुकरबैठो जाय सुवा तत्काल बचायो । कोटि कष्टकरि पाँयमारि करि छूटन पायो ॥ कहगिरिधर कविरायवेगि घर बजै बधाई । दीजैविदापलाशजियत घरजैये साँई ॥ ८१ ॥ साँई तेली तिलनसों कियो नेहनिर्वाह। छानि फटकि ऊजर करी दईबडाई ताह॥दईबडाई ताह पंचमहँ सिगरे जानी । दै कोल्हूमें पेरि करी

एकत्तर घानी ॥ कह गिरिधर कविराययहीमाया प्रभुताई । माया सबते भली मानु मत मेरो सांई ॥८२॥सांई सुवा प्रवीन अतिवाणी वदत विचित्र । रूपवन्त गुण आगरोरामनामसोंचित्त॥रामनामसों चित्त और देवन अनुराग्यो।जहाँजहाँतुव गयो तहाँ तुव नीको लाग्यो ॥ कह गिरिधर कविराय सुवो चूक्यो चतुराई । वृथाकियोविश्वाससेयसेमरको साँई ॥ ८३ ॥ गदहा थोरे दिननमें खूदखाइ इतरात । अफरान्यो मारन कह्योउऐराकीकोलात॥ ऐराकीको लात देत शंका नहिं आनै।ऐराकी सँग रहै ताहि कोऊ नहिं जानै॥कह गिरिधर कविराय रहैंगो तौला जबहा । ऐराकीको लातसहैगो कैसी गदहा ॥८४॥ महुआ नितउठिदाखसों करतमसलहत आय । हम तुम रूखे एकसेहूजतहै रसराय ॥ हूजत हैरसरायविलगजनियाकोमान्यो।मधुर मिष्ट हम अधिक कछुक जियसे जनिजान्यो ॥ कह

गिरिधर कविराय कहत साहबसे रहुवा।तुम नीचे फल बेलि वृक्ष हमऊँचेमहुवा ॥८५॥ गुलतुरासों जायके वार्ता करत करील।हम तुम सूखे एकसों पूंछ देखिये भील ॥ पूंछ देखिये भील भेद जो जानै मेरो। ताहूं पूंछ बुलाय भेद जो जानै तेरो ॥ कह गिरिधर कविराय ना तरि कारिहौ हुर्रा। अब जनि भूलि गुमान करो फिरिहो गुलतुर्रा ॥८६॥ हुक्का बांधो फेंटमें नैगहिलीन्ही हाथ। चले राह-में जात हैं लिये तमाखू साथ ॥ लियेतमाखूसाथ गैलको धंधा भूल्यो। गइ सब चिंता भूलि आगि देखत मन फूल्यो ॥ कह गिरिधर कविराय जो यमकर आयो रुक्का। जियलैगयोजो कालहाथ-में रहिगा हुक्का ॥ ८७ ॥ पगडी सूही बांधिके भयो सिपाही लोग। वास बेंचिके खात हैं भयो गांवमें रोग ॥ भयो गांवमें रोग पूंछ निबरी देखा-वहु। मनमें बडहौ छैल राग पनघटपर गावहु ॥

कह गिरिधर कविराय महीन तुमते है चूही । भये सिपाही आनि बांधिकै पगडी सूही ॥८८॥ पानी बाढ़ो नावमें घरमें बाढ़ो दाम ॥ दोनों हाथ उलीचिये यही सयानो काम ॥ यही सयानोकाम रामको सुमिरण कीजै॥ परस्वारथके काज शीश आगे धरि दीजै॥कह गिरिधर कविराय बड़ेनकी याही बानी ॥ चलिये चाल सुचाल राखिये अपनो पानी ॥ ८९ ॥ राजाके दरबारमें जैये समया पाय ॥ सांई तहां न बैठिये जहँ कोउ देय उठाय ॥ जहँ कोउ देय उठाय बोल अनबोले रहिये॥हँसिये न हहराय बात पूँछेते कहिये ॥ कह गिरिधर कविराय समयसों कीजै काजा ॥ अति आतुर नहिं होय बहुरि अनखैहै राजा ॥ ९० ॥ कृतघन कबहुँ न मानहीं कोटि करै जो कोय ॥ सर्वस आगे राखिये तऊ न अपनो होय ॥ तऊ न अपनो होय भलेकी भली न मानै ॥ काम काढि

चुपरहै फेरि तिहि नहिं पहिचानै ॥ कह गिरिधर कविराय रहत नितही निर्भ्रमन ॥ मित्र शत्रु ना एक दामके लालच कृतघन॥९१॥नमो नारायण निरामय कारज कारण रहत ॥ संबंधसंज्ञा जात पुनि गुण क्रिया असहत ॥ गुण क्रिया असहत कल्पना सर्व अतीता॥नेति नेति करके भई चकृत सुरती गीता ॥ कह गिरिधर कविराय न जामें सत रज तमो ॥ निरावर्ण इक दाट आपकूं आपे नमो ॥ ९२ ॥ गिरिधर सो जो गिरि धरे प्रयत्न शून्य बिन खेद ॥ गिरि कारन सूक्ष्म स्थूल तन गिरिधर प्रत्यक वेद॥गिरिधर प्रत्यक वेद जो है नितहीं प्रापत ॥ विना श्रोत्र ध्वनि सुने वाक बिन शब्द अलापत ॥ कह गिरिधर कविराय जासमै नहीं मित्र अर ॥ सबको आपन आप आतमा-सों तू गिरिधर ॥ ९३ ॥ बानी मात्र जगत सब चिद व्यतिरेक न रंच ॥ ज्यों मृद सत्य

घट मिथ्या त्यों कलपत परपंच ॥ त्यों कलपत परपंच तंतुमें जैसे वस्तर ॥ कनकमाहिं आभरन लोहमें जैसे शस्तर ॥ कह गिरिधर कविराय द्वैतकी धूरि उडानी ॥ मनकी जहां न गम्य विषय करि सकै न बानी ॥९४॥ बानी विषय न करि सकै मनकी जहां न गम्य ॥ सो परमेश्वर ब्रह्महै ऐसो लियो मरम्य ॥ ऐसो लियो मरम्य अपनपो आप निहार्‌यो ॥ मोह संशय विपरीत भ्रांतिको मूल उखार्‌यो ॥ कह गिरिधर कविराय विलोवो काहे पानी ॥ मनकी जहां न गम्य विषय करि सकै न बानी ॥ ९५ ॥ आत्म भिन्न जो जो क्रिया सो सो भ्रमको मूल ॥ कायिक वाचिक मानसी सभी आपनी भूल ॥ सभी आपनी भूल मोक्ष हित करै जु करनी ॥ ज्यों रवि चाहै तेज जाय खद्योतकी सरनी ॥ कह गिरिधर कवि पुरुष साध्य सो सभी अनातम॥

स्वतः सिद्ध अपवर्ग रूप चिद्घन तू आतम ॥९६॥ खल सज्जन दो जगतमें तिनकी है यह रीत ॥ ज्यों सूचीको अग्र भाग पृष्ठभागहै मीत ॥ पृष्ठभाग है मीत एक तो छिद्दर करि है ॥ दूसर तिसे अछादत ततछिन गुन करि भरिहै ॥ कह गिरिधर कविराय आत्मा एकहि अमल ॥ निज माया करि बन रह्यो सोई सज्जन खल ॥ ९७ ॥ चिदविलास प्रपंच यह चिदविवरत चिदरूप ॥ ऐसी जाकूं दृष्टि है सो विद्वान अनूप ॥ सो विद्वान् अनूप महाज्ञानी ततदरसी ॥ निजआतम व्यतिरेक वारता सुने न करसी ॥ कह गिरिधर कविराय विवेकी त्यागैं जिद ॥ किन संग करैं विवाद वाद जो है इक चिद ॥ ९८ ॥ राम तुही तुहि कृष्ण है तुहि देवनको देव ॥ तुहि ब्रह्मा शिव शक्ति तू तुहि सेवक तुहि सेव ॥ तुहि सेवक तुहि सेव तुही इंदर तुहि शेषा ॥ तुही होय सब रूप

कियो सबमें परवेसा ॥ कह गिरिधर कविरायपु-
रुष तुहि तूही वाम ॥ तुहि लछमन तुहि भरत
शत्रुघन सीताराम ॥ ९९ ॥ बेड़ा तू दरियाव तू
तूहि वार तुहि पार ॥ तुही तरावे तरे तू तुहि मध
डूबनहार॥तुहि मध डूबनहार सर्व लीला है तेरी॥
तुहि घंटा तुहि शंख तुही रणसिंहा भेरी॥कहगिरि-
धर कविराय तुही वस्ती तुहि खेडा॥तुहि नावक
तुहि नीर तुही पतवारी बेडा॥१००॥ भूल्यो जब
तू आपको तबहीं भयो खराब॥ धरो गरेका आस्पद
उतरगई सब आब।उतरगई सब आब दरोदरखावै
धक्के॥धावै कभी केदारखंड पुनिजावै मक्के॥कह
गिरिधर कविराय कुफरके पलने झूल्यो ॥ बकने
लग्यो तुफान जमा सब अपनीभूल्यो॥१०१॥कोप
करै जिस शख्सपर परमेश्वर जब आप ॥ लोकन
साथ मिलाव पुनि चाहै दिन अरु रात॥चाहै दिन
अरु रात वासना उपजै खोटी ॥ कृपणताकेलिये

बुद्धि होजावै मोटी॥ कह गिरिधर कविराय आपनो करिकै लोप॥अनातम चिंतन करै यही ईश्वरको कोप ॥ १०२ ॥ करे कृपा जिस पुरुषपर अतिशय करिके राम॥ताको कोई ना फुरे लौकिक वैदिक काम॥ लौकिक वैदिक काम रहैं नहिं करनो बाकी ॥ हर जगा हर बखत ब्रह्मकी होवै झाँकी॥कह गिरिधर कविराय अविद्या जिसकी मरै ॥ सर्व क्रियाके माहिं एक खुद दरशन करै ॥१०३॥ भाग्य सर्वत्र फलत है नच विद्या पौरुष सरल ॥हरि हर मिल सागर मथ्यो हरको मिल्यो गरल॥हरको मिल्यो गरल हरीने लक्ष्मी पाई॥षट भग दो संपन्न भागका कही न जाई॥ कह गिरिधर कविराय कोउ मिल खेलैं फाग। कोउ हमेसा रोवै आयो अपने भाग ॥ १०४ ॥ देवनाम है भागका सो है जिसका सूर ॥ ताकी हानी करनको है किसका मकद्दूर ॥ है किसका

मकदूर आप विधि विष्णु महेशू ॥ वाकी रच्छा करैं भवानी सहित गनेशू ॥ कह गिरिधर कविराय भैरवी शक्ति सैव ॥ इक रोम न सक उखार दाहने जब तक दैव ॥ १०५ ॥ दैव अधीन व्यवहार सब अन्य अधीन न वीर॥ अन्य अधीन जु होय कोई पीवन देत न नीर ॥ पीवन देत न नीर तोय ना देत नहावन ॥ पावक देत न तपन पवन पुनि देत न पावन ॥ कह गिरिधर कविराय आत्मा इक निरवैव ॥ उभय अविद्या सहित अरोपित जिसमें दैव ॥१०६॥ अदृष्ट समान बलिष्ठ नहिं देख्यो जगमें मीत ॥ करै भगौडा सूरको पुनि कायरकी जीत॥ पुनि कायरकी जीत धनीको करहै कँगला॥निर्धनको करै धनी सहर करि डारै जँगला ॥ कह गिरिधर कविराय इष्टको करै अनिष्ट ॥ पुनि अनिष्टको इष्ट ऐसो कौन अदृष्ट॥१०७॥अवश्यमेव भो-

कव्य है कृतकर्म शुभाशुभ जोय ॥ ज्ञानी हँसकरि भोग है अज्ञानी भोगै रोय ॥ अज्ञानी भोगै रोय पुनः पुनि मस्तक कूटै॥प्रारब्ध जो होय विना भोगे नहिं छूटै ॥ कह गिरिधर कविराय न दीरघ होत रहस्य ॥ जैसे जैसे भाग पुरुषके फलै अवश्य ॥ १०८ ॥ थोरे दिनके कारणे कवन उपाधीकरै। किस जीवनक वास्ते जगमें पचि पचि मरै॥जगमें पचि पचि मरै आपनी इज्जत खोवै ॥ एक गमावै हुरमत द्वितीय फजीहत होवै ॥ कह गिरिधर कविराय जु जीवन मुक्ति लोरै ॥ तजै सर्वका संग जान रहना दिन थोरै ॥ १०९ ॥ देख देख गुण जनोंके मनमें उपजी शांति ॥ मिलबेको चित ना चहै किंतु मिट गई भ्रांति ॥ किंतु मिट गई भ्रांति साथ सब गये संदेह ॥ किन संग करिये वैर कौन सँग लाइये नेह॥ कह गिरिधर कविराय बहमकी रही न रेख॥ज्योंकी

ज्यों जब वस्तु यथारथ लीनी देख ॥ ११० ॥
जो सँग आश्रम वरनके ना जातिनके कोल॥जामें
तो मत बैठिहै बैठे तो मत बोल॥बैठे तो मत बोल
बोलै तो छोर विषेरो॥वहि पूछैं कछुव्यवहारथोरेमें
करो निबेरो॥ कह गिरिधर कविराय कहे मत ति
नके लगजो॥ना जा तिनके कोल वरन आश्रमके
सँग जो ॥ १११ ॥ कूकर पागल कटै जिस वह
पागल होय तात ॥ त्यों नर मजवी संगते नर
मजवी होजात ॥ नर मजवी होजात बात हिरदै
धरि लीजै ॥ प्राण जाय तो जाय न मजवीका
सँग कीजै ॥ कह गिरिधर कविराय अधम है
सबसे शूकर॥ ताते भी सो अधम मजबका जो
जो कूकर ॥११२॥ पासी जब लग मजबकी जब
लग होत न ज्ञान ॥ मजब पासि टूटै जबै पावै
पद निर्वान ॥ पावै पद निर्वान निरंजनमाहिं
समावै ॥ जनम मरन भवचक्र विषे फिर योनि न

आवै ॥ कह गिरिधर कविराय बोध विन भ्रमै चौरासी ॥ तब लग होत न ज्ञान मजबकी जब लग पासी ॥ ११३ ॥ गढ़ै अविद्याने रचे हाथी डूब अनंत ॥ जोइ गिऱ्यो तिस खांतमें धँसग्यो कान प्रयंत॥धँसग्यो कान प्रयंत आपको सुनै न देखै ॥ बहिरो अँधरो भयो दशो दिशि तम इक पेखै ॥ कह गिरिधर कविराय यद्यपि शास्तर स्मृति पढ़ै ॥ तिसी तिसीमें मगन गिऱ्यो है जिस जिस गढ़ै ॥ ११४ ॥ जानी रे मन चंचला सब तेरी करतूत॥तूम खौलसे ना टरे घसे ऊतके ऊत ॥ घसे ऊतके ऊत बडो तू है परपंची ॥ कतरत व्योंता करै सर्वथा विन गज कैंची ॥ कह गिरिधर कविराय छिनकमें होवै ध्यानी ॥ छिनमें रचै धमाल रीति तेरी सब जानी ॥ ११५ ॥ जैसा यह मन भूत है और न दुतिय वैताल॥छिनमें चढ़ै अकाशको छिनमें

धँसै पताल ॥ छिनमें धसै पताल होत छिनमें कम जादा॥छिनमें शहर निवास करै छिन वनका रादा ॥ कह गिरिधर बिन ज्ञान चित्त थिर होत न ऐसा॥गुरू अनुग्रह विना बोध दृढ होत न जैसा ॥११६॥ दूजी चरचा ना करै विना एक धिष्ठान ॥ नामपातकूं नाचितै चाख्यो जिन मिष्टान॥चाख्यो जिन मिष्टान न खावै कटू तुरैया ॥ अमृतभच्छन करै उदगारन लेत मुरैया ॥ कह गिरिधर कविराय अभिमानी पाजी मूजी ॥आतम विद्या छोड़ि राग-नी गावै दूजी ॥ ११७ ॥ कीजै ऐसी कथा मत निष्फल कथनी जोय॥सिद्ध न जिसमें अर्थकीनहिं परमारथ होय॥नहिं परमारथ होय वार्ता सो सब तजिये॥राम कृष्ण नारायण गोविंद हरि हरिभजि ये॥कह गिरिधर कविराय सुधा अनुभवरस पीजै॥ आतम अरु संधान होय सो चरचा कीजै॥११८॥

गिनतीनाहिंततज्ञकी होवत अणू समान॥चौरासी खलजीव मिलजेकर बकैं तुफान॥जेकर बकैं तुफान नवल कछु पाछे राखै॥जो जो कहनो नाहिं सोइसो पुनि पुनि भाखै॥कह गिरिधर कवि तपै भानु अरु बरसै पानी ॥ चले पवन अत्यंत व्योमकी यथा नहानी॥११९॥घाटो बाँधो ना रह्यो गईजीतपुनि हार ॥ विधिनिषेध युग नदीसे हुये पहरकर पार॥ हुए पहरकर पार जगत महासिंधु अनादी ॥ भेद पोटके सहित जहां डूबे प्रतिवादी॥कह गिरिधर कविराय द्वैतको दफ्तर फाटो॥स्वरूप ज्ञानकेभये किसीपर कारन घाटो॥१२०॥अँधरी पीसे पीसना कूकर धँस धँस खात ॥ जैसे मूरख जनोंका धन अहमक लैजात॥धन अहमक लै जात संचयकरि वह भी मरि हैं॥ताके पाछे और कुबुद्धी दावाकरि हैं॥कह गिरिधर कविराय भई इक विधकी गँधरी॥ लग्योश्वानको दांव पीसना पीसै अँधरी ॥१२१॥

खायो जाय जो खाय रे दियो जाय सो देह ॥ इस दोनोंसे जो बचै सो तुम जानो खेह॥सो तुम जानो खेह सिके पुन काम न आवै ॥ सर्व शोकको बीज पुनःपुनि तुझे रुआवै॥कह गिरिधर कविराय चरन त्रेधनके गायो ॥ दान भोग बिन नाश होत जो दियो न खायो ॥१२२॥ तप करवेको नर्मदा मरवेकूं सुरधुनि ॥ भजन करनको हरि हर भाषैं ऋषि वर मुनि॥भाषैं ऋषिवर मुनि वसिष्ठ पाराशर व्यास॥दान करै कुरुक्षेत्र साधनज्ञान संन्यास॥कह गिरिधर कविराय शिवोहं शिवोहं जप॥करन ग्राम-को रोक न या सम है कोई तप॥१२३॥गपौडा भा-षाका कोई संस्कृतका कोय ॥ कोई गपौडा पार-सी अंग्रेजी पुनि होय ॥ अंग्रेजी पुनि होय गपो-डा कोई अरबी ॥ ब्रह्मज्ञान बिन विद्या सब ज्यों पाकमें दरबी॥कह गिरिधर कविराय वेग समझो कोइ मौडा॥जाकरी आतम लभै भलाहै सोईगपौ

डा ॥१२४॥भाषा भूसा फेंककै सडी संस्कृत डार॥ भया अरोपत जिस विषे सोहं चिदनिरधार॥सोहं चिद निरधार त्याग सगरी शिरदरदी ॥ परको किस्सो छोड़ि खबरले अपने घरदी॥ कह गिरिधर कविराय वेदको समझो आसा॥तुझमें युग अध्यस्त देव बानी नर भाषा ॥ १२५ ॥ फकीर करनी कठिन है छडनी सभी प्रवृत्त ॥ जीवन मरणा जगतमें बाजांतरहोणां निवृत्त ॥ बाजांतर होणां निवृत्त न रखणी रंचक मोताजी ॥ जो जैसी काय बने तिसीमें रहणा राजी॥कह गिरिधर कविराय भ्रांतिकी फारे चीरी॥ एक आत्ममें मगन तिसी का नाम फकीरी ॥ १२६ ॥ भिक्षा खावै मांगके रहै जहां तहँ सोय॥काम न राखे किसीसों जो होवै सो होय॥जो होवै सो होय विरक्तकी यही निसानी ॥ ब्रह्म विद्या विना अवर बोलै नहिं बानी॥ कह गिरिधर कविराय ज्ञानकी देवे दिक्षा॥ क्षुधा

निवृत्ती अर्थ मांगके खावै भिक्षा ॥१२७॥लियो ठीकरो हाथमें दशहीं दिशाजगीर॥ऐसो जगमें कौनहै जो कर सके तगीर॥जो कर सके तगीर सो तो नहिंमानव॥ देव यक्ष गंधर्व न उतपत हूवो दानव॥ कह गिरिधर कविराय नाश जिन भर्मको कियो॥ लोकलाज सब त्याग ठीकरो हाथमेंलियो१२८॥ भिक्षू बालक भारजा पुनि भूपति यह चार ॥ न जाने अस्ती नास्ती कछु देहि देही पुकार ॥देही देहि पुकार निशि वासर आठो जामू॥जाग्रत सुपनैं माहि फुरे ना दूसर कामू ॥ कह गिरिधर कविराय जगतमें कोउ तितिक्षू ॥ जिनको तृष्णा नाहिं सो ऐसो विरलो भिक्षू॥१२९॥ रहणौ सदा इकांतको पुनि भजणौ भगवंत॥कथन श्रवण अद्वैतको यही मतो है संत॥ यही मतो है संत तत्त्वको चितवन करणौं॥प्रत्यक ब्रह्म अभिन्न सदा उर अंतर धरणौं ॥ कह गिरिधर कविराय वचन दुर्जनको

सहणौं॥ तजके जन समुदाय देश निरजनमें रह-णौं ॥१३०॥ बहता पानी निर्मला पडागंध सो होय॥त्यों साधू रमता भला दाग न लागै कोय। दाग न लागै कोय जगतमें रहै अलेदा॥राग द्वेष जुग प्रेत न चितको करै विछेदा ॥ कह गिरिधर कविराय शीत उष्णादिक सहता॥होइ न कहुँआ-सक्त यथा गंगाजलबहता॥१३१॥एका एकीसिद्ध पुनि सिध साधक दोइ मुनीस॥ तीन चार कउटं बसम लस्कर हैं दश बीस॥ लस्कर हैं दश बीस तहां नानाविधि झगडो॥सदा रहै विक्षेप जु मेरी तेरी रगडो ॥ कह गिरिधर कविराय पुरुष जो परम विवेकी॥ करके सबको त्याग सुविचरे एका एकी ॥१३२॥ मनकी मेटै दीनता करै वासना नास ॥ प्रत्यक ब्रह्म अभिन्नका पुनि पुनि बोध प्रकास॥पुनि पुनि बोध प्रकास विषयकी ममता जारै॥लोक ईषणा आदि कामना सकल निवारै॥

कह गिरिधर कविराय त्याग अहंता तनकी ॥ तत्त्वज्ञान उपदेश दुष्टता हरहीं मनकी ॥ १३३ ॥ मन रे मंदी बात छड गंधा तज हंकार ॥ ज्ञान धनुष उरमें धरो करहं ब्रह्म टंकार ॥ करहं ब्रह्म टंकार जरा तू पग धर आगे ॥ भर्मजोपंचप्रकार हृदयसों ततछन भागे ॥ कह गिरिधर कविराय मूल संसारका खन रे ॥ नष्ट होय अज्ञान द्वैत फिर रहै न मन रे ॥ १३४ ॥ देही सदा अरोग है देह रोगमय चीन॥यहनिश्चयपरिपक जिसे सोई चतुर परवीन ॥ सोई चतुर परवीन विवेकी सो है पंडित ॥ दरश करे अत्यन्त आत्मा लखे अखंडित ॥ कह गिरिधर कविराय आपना आप सनेही ॥ परमानन्द स्वरूप और नहिं ऐहे देही ॥ १३५ ॥ बहुत मलिनयहदेहहै देहीअतिशय शुद्ध ॥ उभय सु अंतरजानिये कसशौचकरे की बुद्ध ॥ कसशौचकरेकीबुद्ध भेद निश्चयकिय

जबहीं ॥ विमल काल ते विमलमलिनशुध होइ न कबहीं ॥ कह गिरिधरकविरायजहांलगि शास्त्र संत ॥ सबका यह सिद्धांत शरीरी असार अनंत ॥ १३६॥ शरीरी सकल शरीरमें व्यापक नभवत एक ॥ स्थावर जंगम तजि जतेहैंपरिछिन्न अनेक॥ हैं परिछिन्न अनेक द्रव्य जडरूप विकारी ॥ द्रष्टा चेतन नित्य आतमा अव्यभिचारी ॥ कहगिरिधर कविराय मिटे तब सब दिलगीरी ॥ जब निश्चय साक्षात् होत अपरोक्ष शरीरी ॥ १३७ ॥ कारन सूक्षम स्थूलते जान्यौ अहं अतीत ॥ क्या कर सकहीं द्वन्द्व तिस भौतिक उष्ण रु शीत॥भौतिक उष्ण रु शीत लगत हैव्याकृततनको ॥ तिनकरि राग रु द्वेषसुं होवत लौकिक मनको ॥ कह गिरिधर कविराय दुःख सुख विना विचारन॥ आतम सबते परेजु कल्पित कारज कारन ॥ १३८ ॥ अमर नाथ इक आत्मा सब देवनको देव ॥

कोटिन मध्ये संतजन जानत है कोउ भेव। जानत है कोउ भेव विवेकी पुरुष अकामी ॥ अनुगत अंतर बाज व्योमवत अंतरयामी ॥ कह गिरिधर कविराय विना अविवेकजूभपर॥इंद्रियगणकोनाथ आत्मा सो तू अमर॥१३९॥नारायणवहआप है स्वप्रकाश विज्ञान ॥ निज स्वरूपकोभूलनो है कल्पित अज्ञान ॥ है कल्पित अज्ञान नानाविध नाच नचावै ॥ घटी यंत्र ज्यों उर्ध अर्ध इत उत भरमावै ॥ कह गिरिधर कविराय पीवै जब ज्ञान रसायन ॥ स्वप्रकाश विज्ञानआपकेविषे नरायन ॥१४०॥ सत परमेश्वर आप है बन्यो चहै कछु और ॥ अवैदिक साधनमेंलग्योमूढनको शिरमौर॥ मूढनको शिरमौर आप कूं आप न जानै ॥ श्रुति स्मृती पुराण शास्त्रका कहा न मानै ॥ कह गिरिधर कविराय भ्रमे इतको क्षण उतै ॥ बन्यो चहै कछु और परमेश्वर आप है स्वतै ॥१४१॥ प्रती-

चा जो सब जगतका कहुं विचार कर कवन ॥जामें हैं स्थित लोकत्रय सहित चतुरदशभवन ॥ सहित चतुर दश भवन नारहानहुइनाहूये ॥ ज्योंवंध्याका पूत न उतपन भये न मूये॥कहगिरिधर कविराय दृश्य मृगजलको कीचा ॥ तामेंजायध्यायोआप हुइके प्रतीचा ॥ १४२ ॥ अचबिन जैसे वरनको होवत नाहिं उचार ॥ त्यों अस्ती भाती विना सिद्ध न हुइ व्यवहार॥सिद्ध न हुइव्यवहार मानसी वाचक कायक ॥ सनस फुरण सुंदरजन जब लग होत सहायक ॥ कह गिरिधर कविराय रहे बहु स्याने पचपच॥होवत नाहिंउचारवरनको जैसे बिन अच ॥ १४३ ॥ स्वरविहीनअक्षरयथा व्यंजन होत मुरदार ॥ त्यों सत चिद आनंद बिन होत प्रपंच असार ॥ होत प्रपंच असार जहां लग कारन कारज ॥ जड अनित्यदुखरूप वेदविद कहत आचरज ॥ कह गिरिधर कविराय

सोई तू अनुगत पुर पुर॥ यथारागिनीतान ग्राम मुरछनमें इक सुर ॥ १४४ ॥ द्रष्टा चिददृश्यवर्ग को पुनि दृश्यमें अनुसूत ॥ जन अध्यस्त तामें सबै यावत भौतिक भूत ॥ यावत भौतिक भूत अरोपित रज्जु सरपवत ॥भ्रम कर सिद्ध प्रसिद्ध अनातम रूप असत सत॥कह गिरिधर कविराय आत्मा तू इसमष्टा ॥ कलनारहित अशून्यजु चेतन दृश्यको द्रष्टा॥१४५॥अत्ता जो सब जगतको सोइ भूमाधिष्ठान ॥ सोई प्रत्यक आतमा सोई ब्रह्मभगवान॥सोइब्रह्मभगवान सच्चिदानंदविश्वेश्वर॥ त्रिधाभेद परिछेदरहित अमीत परमेश्वर । कह गिरिधरकविरायएक रस जिसकीसत्ता ॥ सो तूई साक्षात् प्रत्यक ब्रह्मंडकोअत्ता ॥१४६॥त्याग जीवता जीवकी ईश्वरको ईशत्व ॥ दोनूंकाधिष्ठान जो सोनिश्चयकर तत्त्व॥सोनिश्चयकर तत्त्व वस्तुगत भेद न जामैं ॥ समष्टि व्यष्टि सर्व गत

अल्पज्ञता आरोपितताभैं॥कह गिरिधर कविराय मोह निद्रासे जागै ॥ ईश्वरकी ईशता जीवकी जिवता त्यागै॥१४७॥ क्षुधाप्राणकोधर्म है शीत उष्ण तनधर्म ॥ आतमसदाअसंग है ज्ञानीजानै मर्म ॥ ज्ञानी जानै मर्म अवर नहिं जानै कोई ॥ कै जानै जिज्ञासु मुक्तपद चाहत जोई॥ कहगिरिधर कविराय ज्ञान जब पीवैसूधा ॥ तबनिरसंशय विषे प्राणको धर्म है क्षूधा॥१४८॥ स्याने सेईआ खिये जिनकी स्यानप एह॥ भिन्नभिन्न करिकेलखै यह देही यह देह ॥ यहदेही यहदेह विषेयुगन्यारे न्यारे ॥ प्रमाणो जुगतोंकरकेविवेकीरूपनिहारे॥ कह गिरिधर कविराय और सब निपटइजाने ॥ जिनको आतमदृष्टि वही हैं पुरुष सयाने॥१४९॥ संसारी इन जननते किने न पायो चैन ॥ इक रस निरछल कपट बिन कबौं न बोलत बैन॥ कबौं न बोलत बैन भनत प्रथम छिन आरय ॥ उसीतुंड-

से दूसर छिनमें वदत अनारय ॥ कह गिरिधर कविराय किया चाहै अनुसारी ॥ ऋषि मानव गंधर्व यक्ष जेते संसारी ॥१५०॥ ढीली भक्ती देखिकै होवत संत उदास ॥ भावहीनके गृहविषे करैं न दंड निवास ॥ करैं न दंड निवास चीनकर श्रद्धा बोदी ॥ करैं उपेक्षा तिनकी जो अश्रद्धक मोदी ॥ कह गिरिधर कविराय प्रीति जहँ परम रसीली ॥ तहां चार दिन टिकै न चाहैं सेवा ढीली॥१५१॥ छोटाजिय हत्या बडी अल्प लाभ बहु खेद ॥ सोना पडैं प्रवृत्तिमें जिन जान्यो यह भेद ॥ जिन जान्यो यह भेद नहीं वह छानत भूसा ॥ खोदे महा पहाड मिले इक लघुसा मूसा ॥ कह गिरिधर कविराय जान्यो जिन मारग खोटा ॥ सो ना तिसमें चलै चलै सो मतका छोटा ॥१५२॥ पंगत तजी प्रवृत्तिकी छोडी जात जमात ॥ फारकती सबसे लही परमेश्वरकी दात ॥ परमेश्वरकी दात

भाग जिसके सो पावै॥ भाग्यहीनको ईश मिले तौ शांति न आवै॥कह गिरिधर कविराय डार दुष्टनकी संगत ॥ वीतरागमन भयो कौनकी चाहे पंगत ॥ १५३ ॥ बैल भूल विधि नर रचे लादै दाढ़ी मूंछ ॥ अकल वही हैवानकी विना शृंग बिन पूँछ ॥ विना शृंग बिन पूँछ और तो पशुकी रहनी ॥ भय मैथुन आहार नींद पुनि सुननी कहनी ॥ कह गिरिधर कविराय चलेना सूधी गैल ॥ खाल आदमी दीले पहरी है तो बैल ॥१५४॥ बाहर जो अंतर सुही आगे पाछे एक ॥ जो ना समझे बात यह ताके पिता अनेक ॥ ताके पिता अनेक तथा जानो तिस माता॥जहां जहां वह जाइ तहां तहँ लहै असाता ॥ कह गिरिधर कविराय एक चिद बानन जाहर ॥ सोइ ऊरध सोइ अरध सोई पुनि अंतर बाहर ॥१५५॥ यारीतासँग कीजिये गहै हाथसो हाथ॥

दुख सुख संपति विपतिमें छिन भर तजै न साथ ॥ छिन भर तजै न साथ महत दृष्टांत बखानौ॥ज्यों अकाश सँग पोल और इक सुनौ बखानो ॥ कह गिरिधर कविराय निमकमें ज्यों रस खारी ॥ याप्रकार जो व्याप्त ताहि सँग लइये यारी॥१५६॥साईं कोक पुकारदे रेमन हो तू रिंद ॥ यह यकीन दिलमें धरो मैं सबको खाविंद॥मैं सबको खाविंद एक खालक हकताला॥खिलकतकी फना हिर हो हरसे परवाला॥कह गिरिधर कविराय आपना दुखी दुखाई ॥ मन खुदाइ लाजिसम बांग हरदम दे सांई ॥१५७॥ द्रष्टा दृश्य न होतहै दृश्य न द्रष्टा होइ ॥ द्रष्टाने जब आपको दृश्यरूप कर जोइ॥दृश्य रूप करजोइ इसीते भयो कुचैनी ॥ मान्यो निजको शैव शाक्त वैष्णव अरु जैनी॥कह गिरिधर कविराय सहै नाना विधि कष्टा ॥ भ्रांति कूपके माहिं परयो जिस दिनसे द्रष्टा ॥१५८॥ एक

फकीरी लाभ जब दूसर ज्ञान अथाह ॥ उभै रतन ढिग जिनहिके तिनको क्या परवाह॥तिनको क्या परवाह वस्तु जिस पाय अमोलक॥कौन तिनोंको कमी अटुट धन जिनगर गोलक ॥ कह गिरिधर कविराय भ्रांति जिन दीनी छेकी॥सो क्यों होवै दीन ब्रह्म व्रत जिनके एकी॥१५९॥लोभ रही ना अर्थकी नाहिं परमारथ भ्रांत ॥ कौन वस्तुके वास्तै फिरै निकासत दांत ॥ फिरै निकासत दांत तबी जब होइ अपेष्या॥विना प्रयोजन कोइ प्रवृत ना काहूं देष्या॥कह गिरिधर कविराय फकीर अपनी बोर॥ प्रमादी ढिग तब जावै जब कछु होवै लोर ॥१६०॥ आवे तो अटकाउ नहिं जातेको नहिं रोक॥ इस लौकिक व्यवहारमें हर्ष शोक नहिं टोक॥ हर्ष शोक नाहिं टोक नहीं खाइसकइ मासा॥ फकिरी करनी लगी जबै फिर किसकी आसा ॥ कह गिरिधर कविराय कोइ रोवै कोइ गावै ॥ नहीं किसीसों

काम भावे आवै जिन आवै ॥ १६१ ॥ रोटी चारों वरनकी पावत है नीधरक ॥ कुत्सित मारग छोडकै चालै सूधी सरक ॥ चालै सूधी सरक न मनमें राखै धरका ॥ तिनमें करै विकल्प जोउ सो पामर लरका ॥ कह गिरिधर कविराय किसीकी सुनै न खोटी ॥ ना काहूकी कहै भ्रांति तजि मांगत रोटी ॥ १६२ ॥ जंगलमें मंगल तुझे जो तू होवै फकर ॥ खिदमत तेरी सब करैं दिलके छांडै मकर ॥ दिलके छांडै मकर फकीरीका रँग लागै ॥ मूलसहित संसार रोग सिगरो भ्रम भागै॥कह गिरिधर कविराय कुफरकी तोरो संगल॥जहँ इच्छा तहँ रहो नगर वा अथवा जंगल॥१६३॥भोजन छाजन नीरकी करैं सुचिंता मूढ॥ज्ञानी चिंता ना करैं निज पदमाहिं अरूढ ॥ निज पदमाहिं अरूढ तिनोंको चिंता कैसी॥तिस-हीमें आनन्द अवस्था प्रापत जैसी ॥ कह गिरिधर कविराय अवर ना रखै प्रयोजन ॥ आतम चिंत-

न करै अदृष्ट पहुँचावत भोजन ॥ १६४ ॥ देनी दमरी एक ना लेनेकौ न छदाम ॥ गांठ बांध नहिं चालते फूटी एक बदाम॥ फूटी एक बदाम न राखैं दूसर दिनको॥विना आपने आप भरोसा और न जिनको ॥ कह गिरिधर कविराय रही ना बाकी लेनी ॥ कीनो जबी हिसाब न निकसी कौडी देनी ॥ १६५ ॥ पोथी पाना फेंकके विचरो ह्वै निहकाम ॥ आतम अरु संधानकर दिलमें रहै अराम ॥ दिलमें रहै अराम और कछु फुरै न शंका॥अहंब्रह्म परिपूर्ण निनी दिन बाजै डंका ॥ कह गिरिधरकविराय दृश्य तुझ बिन सब थोथी॥ तू सबको धिष्ठान अरोपित जिसमें पोथी ॥ १६६ ॥जानो नहिं जिस गाममें कहा बूझनो नाम ॥ तिन सखसनकी क्या कथा जिनसों नहिं कछु काम ॥ जिनसों नहिं कछु काम करे जो उनकी चरचा॥राग द्वेष पुनि क्रोध बोधमें तिनका

परचा ॥ कह गिरिधर कविराय होइ जिन सँग मिलि खानो ॥ वाकी पूंछो जात वरन कुल है क्या जानो ॥ १६७ ॥ नाहीं सुसर जमात्रि नहिं सेवक सेव्यसँबंध ॥ तास क्रिया पिख जोर रे सो मूरख जड अंध॥सो मूरख जड अंध अंधको है बहुचेरो ॥ विना प्रयोजन अहमक जहँ तहँ करै बिखेरो ॥ कह गिरिधर कविराय किसीको कहिये काहीं ॥ जो होवै कछु निसबत सो सो सुपने नाहीं ॥ १६८ ॥ जासु हानिसे लाभ नहिं जासु लाभ नहिं हान ॥ ताकी चरचा जो करै सो बेकूफ निदान ॥ सो बेकूफ निदान पर्‍यो मत्सरकी खाई ॥ नहीं जोर नहिं जुलम अकलकी है कमताई ॥ कह गिरिधर कविराय न बैठो तिनके पासा॥ वैर करै निर्वैर नाल खोटी बुध जासा ॥१६९॥ कीनो चाहै कामको कर न तामें देर ॥ पुनः विपर्यय होइगो यहि अदृष्टको

फेर ॥ यहि अदृष्टको फेर कर्म ग्रह टरै न टाऱ्यो॥ बिन भोगे प्रारब्ध और विध मरै न माऱ्यो॥कह गिरिधर कविराय जु पूरव दीनो लीनो॥सो सो भोगै पुरुष दुःख सुख अपनो कीनो ॥ १७० ॥ होनी हुइ सो नामिटे अनहोनी ना होइ॥ऐसो निश्चय जिनहिको मानव कहिये सोइ ॥ मानव कहिये सोइ और तो सबही पोये॥ अल्प बातको समझ नहीं निज गुरुने खोये ॥ कह गिरिधर कवि जानु जिसीने एक अजोनी ॥ तिसकी है सब लीला जानो जो अनहोनी॥१७१॥सांचीसांची बात सुन रे मन छाड पखंड ॥ लहै निरंकुश तृप्ति तब चीन्है एक अखंड ॥ चीन्है एक अखंड शुद्ध तब होवै दृष्टी॥ कर्त्ता क्रिया रु कर्म नकिंचित भासै सृष्टी॥ कहगिरिधर कविराय और करनी सब काची ॥ जिस कर आतम लहै जान विद्यासो सांची ॥१७२॥कीच पीछलो धोइके आगे नाहिं

लगाव॥ऐसा तुझको फेर रे मिले न जलदी दाव॥ मिले न जलदी दाव भनत गुरु सुनै न बहरे॥सब सामग्री होत या भूल्यो सिखर दुपहरे॥ कह गिरिधर कविराय धँसो मत काँदेबीच॥ऊंचेमारग चलो जहां फिर लगै न कीच॥१७३॥ ऐसी रचना तैं रची अतुल असंख्य अमाप॥ रचकर जब देखन लग्यो भूल गयो फिर आप॥ भूलगयो फिर आप झूठको सच करि जान्यो॥सांचेको पुनि झूठ देवको देवल मान्यो॥ कह गिरिधर कविराय सुपनकी सृष्टी जैसी॥ जाग्रतमें रह नाहिं दृश्य संपूरण ऐसी॥१७४॥ मडी बांध बैठत नहीं नहीं प्रबोधत सती॥ करन ग्रामको वशकरै वीतरागनरयती॥ वीतराग नरयती न भिक्षा करे सथूला॥ विविक्त देशमें रहै मिटाय अविद्या भूला॥कह गिरिधरकविराय भ्रांतकी तोरे तगडी॥ अन्न प्रान मन बुद्धि कोश आनंद जो मडी॥ १७५॥ बिगरे तो जो

होय कछु विगरनवालीसे ॥ अक्लेद्य अदाह्य अशोष्यको कौन सकस कोभै ॥ कौन सकस कोभै बुद्धि यह जिसने पाई ॥ तिसके ढिग दिलगीर नहीं कदाचित आई ॥ कह गिरिधर कविराय कालत्रय जो ना डिगरे ॥ अचल अछेद्य अकृत्रिम सो कहु कैसे बिगरे॥१७६॥देह दुःखकी खान है ग्रसित सोककी खान ॥ अविद्या जो है आपनी जन्माकर पहिचान ॥ जन्माकर पहिचान समझ जो सुखकी खानी॥ जामें वेदप्रमान पुनी आपतकी बानी॥कह गिरिधर कविराय निरंकुश तृप्ती एह॥छूटै तन अभिमान द्रष्ट फिर रहै न देह ॥१७७॥साखीका लक्षण सुनोसाक्षी कहिये सोइ। उदासीन चैतन्य पुनि समीपवर्ती जोइ ॥ समीप वर्ती जोइ सोइ तो साक्षी होई ॥ इन लक्षणते रहितको साक्षी कहै न कोई ॥ कह गिरिधर कविराय वेद पुनि लोकहु भाषी॥ भया न है नहिं

होइ और साखीको साषी ॥१७८॥ चेलो उनको चाहिये जिनके धन वा धाम॥इन बिन चेला जो करै सो है पुरुष सकाम ॥ सोहै पुरुष सकाम कामनावान अजारी ॥ वीतरागको स्वांग बनायो महा बजारी ॥ कह गिरिधर कविराय विरक्त जन रहै अकेलो। जिनको तृष्णा रोग लग्यो सो मूड़ो चेलो ॥१७९॥पढनो पुनः पढावनो वागेंद्रियका विसा ॥सो तो है यह तबतलक जबतक होइ न निसा ॥ जबतक होइ न निसा असल दिल अंतरखासी ॥ अत्यंत अघायो पुरुष भात कब खावै बासी ॥ कह गिरिधर कविराय ज्ञान मारगको चढ़नो ॥ ब्रह्मधाम साक्षात् भये फिर बनै न पढ़नो ॥ १०८॥ सौदा ऐसा कीजिये जामें परै न टोट॥जहां जाइ तहँ नफा हो बंधनि लगैन पोट॥बंधनि लगैनपोटखरच नालागै पैसे॥आडरहितपुनिविचरै नख पटकारी बीसो॥

कह गिरिधर कविराय चढै हाथीके हौदे ॥ ऐसो कौन कुबखत करै फिर नाखिस सौदे ॥ १८१ ॥ खटके वाली वस्तुको दीनी जिसने डार ॥ भावै रहै बजारमें भावै बीच उजार ॥ भावै बीच उजार परा रहे मुखै न बोलै ॥ अथवा बात अनेक करत निशि वासर डोलै ॥ कह गिरिधर कविरायचीज जो चारो पटके॥सुत दारा धन धाम गये तिनके सब खटके ॥१८२॥ पोल निकास्यो जगतको सुषुप्ति अवस्थामाहिं ॥ नाम रूप संसारकी जहां गंध कछु नाहिं॥जहां गंध कछु नाहिं वरणआश्रम भ्रम काटी॥लेशकहूं ना रही किसी मतकीपरघाटी॥कह गिरिधर कविराय आतमा एक अडोल ॥ ता बिन और प्रपंच सर्वको काढचो पोल॥१८३॥ बांधी कसकर कमर जिन जिस कारजके हेत ॥ आलस तजि तत्पर भयो सोइ सिद्ध करलेत ॥ सोइ सिद्ध कर लेत बेर ना लगै उसी छिन॥ज्यों

टिटिभनिने अंड सिंधुसे किये जबी प्रन ॥ कह गिरिधर कविराय चित्त वृति जिसकी फांधी ॥ तिसको सब कछु सुलभ फेंट जब दृढकर बांधी॥१८४॥ साधनधनसंपन्न जोषड्लिंग सहित वेदांत ॥ सद्गुरु मुखसे श्रवण कर सेवै देश इकांत॥सेवै देश इकांत बाह्य मुख वृत्ती हरके ॥ होवै स्थित प्रज्ञ मनन निदिध्यासन करके ॥ कह गिरिधर कविराय अहं ब्रह्म करै अराधन ॥ अपरोक्ष ज्ञानके भये फेर कछु रहै न साधन ॥ १८५ ॥ परम प्रेमको विषय जो सो है अपनो इष्ट॥ता बिन और जु जगतमें सो सब जान अनिष्ट ॥ सो सब जान अनिष्ट दृष्टि यह जिनकी जागी ॥ सो पुमान उत्कृष्ट श्रेष्ठ अतिशय बडभागी॥कह गिरिधर कविराय अलौकिक पायो मरमा॥याते परे न और कोउ पुरुषारथ परमा ॥१८६॥ आदर था अनादरै वचन बुरे त्यों भले ॥ अप्रभु प्रभुता जगतकी धर जूतेके

तले॥धर जूतेके तले राग पुनि द्वेष निवारे ॥ महा-
सिंधुको तरे डुबै क्यों शुष्क किनारे॥कह गिरिधर
कविराय पहिरि समताकी चादर॥ हर्ष शोक कर
दूर तथा दुनियाके आदर ॥१८७॥ क्षीर पिवैया
सकस जो सो नहिं खावत घास ॥ दुग्ध मिले तो
तृप्त हुइ नहिं तो रहै उपास ॥ नहिं तो रहै उपास
और ऊपाव न तीसर ॥ अदृष्टके अनुसार आप रच
दीन्हो ईश्वर ॥ कह गिरिधर कविराय है जिनका
भोजन नीर ॥ तिनको नित जल मिलै खीर खोरेको
खीर ॥ १८८ ॥ आफत आतमको परी कुवर्गा-
ध्यास अठीक॥विना विचारे सिद्ध है विचारे होत
अलीक ॥ विचारे होत अलीक सुपनका जैसे ल-
स्कर॥ इंद्रजालको देव ठुंठको मिथ्या तस्कर ॥
कह गिरिधर कविराय चहै तिन होवे जाफत ॥
तृतयवासना प्रेत लग्यो चेतनको आफत॥१८९॥
हाइ हाइ तबलग रहै जबलग बाह्यहु दृष्ट ॥ अंत-

मुख जब धी भई सब मिटजायँ अनिष्ट ॥ सब मिट जायँ अनिष्ट रहो उत्तर वा बागड ॥ जहां जाइ तहँ आनँद जब मन भयो इकागर।कह गिरिधर कवि धाम चारि फिर आवै धाई ॥ जीव ब्रह्म इकज्ञान विना ना मिटिहैहाई॥१९०॥दशमाग्रह अध्यास है नवग्रहका जो मूल ॥ जबलग देहाभिमान है तब लग मिटै न शूल॥ तबलग मिटै न शूल करै केती चतुराई॥देव जजै जप जपै न सुरकोइ होत सहाई॥ कह गिरिधर कविराय ज्ञानको देवै चसमा ॥ मूला-विद्या नाश होइ ग्रहरहै न दशमा ॥१९१॥ श्रद्धा शक्ति उभय कर होत साधुकी सेव ॥ जगमें एक न होइजो धन्यो रहै गुरुदेव ॥ धन्यो रहै गुरुदेव भक्ति तिस करे न कोई ॥ बिन कारन कछु कारज उत्पन भया न होई॥कह गिरिधर कविराय त्याग कर मलिन सपर्धा ॥ जो धन होवै पास संतपर कीजै श्रद्धा॥१९२॥आतमरथी शरीररथ बुद्धि सा-

रथी जान॥मन डोरी इंद्रिय हय मारग विषय पिछा न॥मारग विषय पिछान देह इंद्रिय मन योगा॥दुख सुख भोगै भोग तत्त्ववित कहै प्रयोगा॥ कह गिरि-धर कविराय है एही परमातम ॥ बुद्धि सारथी जान देहरथ रथी जु आतम ॥१९३॥ सेषी आत-म देव इक पुत्रादिक सब सेष॥यह विवेक जाके हिये ताको कहां कलेस॥ताको कहां कलेस समझ हृदये जब आई॥अन्यो अन्याध्यास तदातम रहे न राई॥ कह गिरिधर कविराय जासमैं फजर न पेषी ॥ अभय निरंजन देव आतमा सो तू सेषी ॥१९४॥ क्षिप्त मूढ विक्षिप्त पुनि एकाग्रता निरोध ॥ पंच भूमिका चित्तकी आतम इक अविरोध ॥ आतम इक अविरोध भूमिकाको परकाशक ॥ आप हुलास स्वरूप पुनी जड वर्ग हुलासक ॥ कह गिरिधर कविराय चिदानंद सदा अलिप्त॥लिपा-यमान मन बुद्धि वृत्ति है जामें क्षिप्त ॥ १९५ ॥

जाग्रत सुपन सुषोपती मूर्च्छा पुनः समाधि ॥ पंच अवस्था बुद्धिकी आतमरहित उपाधि॥आतमरहित उपाधि अकर्ता सदा अभुक्ता॥क्षुधा पिपासा हर्ष शोक मत्सरते मुक्ता ॥ कह गिरिधर कविराय वृत्ति विक्षेप इकाग्रत ॥ सबी अनातम धर्म समाधि पर्यंतसों जाग्रत ॥१९६॥ मायामोह मद राग पुनि ममता दंभ रु काम ॥ यह जामें नहिं पाइये सो परमेश्वर राम ॥ सो परमेश्वर राम सर्वका जाननहारा॥और सबै अध्यस्त आप धिष्ठान अपारा ॥ कह गिरिधर कविराय ध्यान धर सुन रे भाया ॥ सो तू भूमा तूहि अरोपितो जिसमें माया॥१९७॥ आश्रय आशा उभय तजि खावै टुकडो मांग ॥ कहूं किनारे पड़ रहै राख टांगपर टांग ॥ राख टांगपर टांग चाह चिंता सब खोवै ॥ भावै जागै निशिभर अथवा दिनभर सोवै ॥ कह गिरिधर कवि मरियत ठाकुर द्वार उपासरे ॥ धर्मशाल पुनि

डांड रहै भिक्षु बिनआसरे ॥१९८॥ कांटे तले बिछायके करै पुरुषको सैन ॥ देत समयको दोष पुनि तनक परै नहिं चैन ॥ तनक परै नहिं चैन काल अब आयो भारी ॥ जिनकी चखमें करैं अंगुरियां देवत गारी ॥ कह गिरिधर कविराय मोल देलेवै त्राटे ॥ ताकर चहै अराम गाडकर तनमें कांटे ॥ १९९ ॥ बोवै पेड बबूलके खाई लोडै द्राख ॥ धूनी बननकी कामना करे संगरे राख ॥ करे संगरे राख पहन्यो चाहै क्रमची ॥ रंगे रंग चमरुये रगड मजीठ हिरमजी ॥ कह गिरिधर कविराय सुखी सो कैसे होवै॥तृष्णा राग रु द्वेष ईर्षा मत्सर बोवै॥२००॥खानो निज प्रारब्ध फिर क्यों कर होना दीन॥रहुनो जगत सराइमें दावा कहा प्रवीन॥ दावा कहा प्रवीन जु कीनो अपनो पइये ॥ बुरे कामका नाम भूलकर कबहुँ न लइये॥ कह गिरिधर कविराय जु तिल इक संग न जानो॥तो संग्रह-

नहिं बनै बनै देनो वा खानो ॥२०१॥ भोग ए-
क युग भोगता होवै तहां विवाद॥जहां न सेखी दू-
सरो कोहु न करै विषाद॥कोहु न करै विषाद उद-
य जब होवै सुकृत॥मंगल चारो ओर सबी दुर जावै
दुष्कृत ॥ कह गिरिधर कविराय यही तो कमला
रोग ॥ अहंता उभय प्रकार पुनि है यद किंचित्
भोग ॥ २०२ ॥ तीन ईषणा त्यागके करै मुमुक्षू
सोध॥सो परिग्रहको क्यों चहै जिनके आतम बो-
ध ॥ जिनके आतम बोध वै राखै आइ चलाई ॥
आगे देवनहार जहां तहँ है महमाई ॥ कह
गिरिधर कविराय सुहोवै कदी न दीन ॥ जिसने
दई उठाय वासना मनसे तीन ॥२०३॥ मेरी तेरी
छोडके पक्षापक्षहि नाख ॥ राग द्वेषको दूरकर
निजानंद रस चाख ॥ निजानंद रस चाख और
रस लागै फीके ॥ एक ज्ञानके भये दुःख मिटजावैं
जीके॥कह गिरिधर कविराय रंग जो पैरै गेरी ॥

तब यह होवै सफल तजै जब मेरी तेरी ॥२०४॥
दुखी परमेश्वर बन रह्यो भई आपनी चूक ॥ परमा-
नंद रस छांडके चाटन लाग्यो थूक ॥ चाटन ला-
ग्यो थूक यही तो अहमकताई ॥ तिसका चिंतन
करै न जिनमें सुख इकराई ॥ कह गिरिधर कविरा-
य हुयो चाहै जो सुखी॥चीन्है अपना आप फेर ना
होवे दुखी ॥२०५॥ मौला लोक पुकारदे रे मन
मत हो तंग॥ पुनः किसीको मत करो ग्रहमें लागै
रंग॥ग्रहमें लागै रंग अविद्या–बंध न टूटै ॥ मिलै
विवेक संत कुपत्तोंका सँग छूटै ॥ कह गिरिधर
कविराय त्याग कर मारग औला ॥ जौन तौन
परकार आपको लखले मौला ॥ २०६ ॥ जोडे
वृत्ती ब्रह्ममें सर्व तरफसे मोड ॥ पुनः प्रमादी
नरोंकी तनक न राखै लोड॥तनक न राखै लोड
बहुत दिन साथ न बोलै॥मन वाणीको अचल करे
जो बहुरि न डोलै ॥ कह गिरिधर कविराय प्रीति

विषयनकी तोडे ॥ सर्वतरफसेखींचिचित्त प्रत्यकमें जोडे ॥२०७॥ कारन महाबिछेपका मेला जात जमात ॥ इनसमानसंसारमेंअवर नकोउ उपाध ॥ और न कोउउपाध यथा एहत्रयब्याधी ॥ जो जन इनमें धँसै तिनोंको कहां समाधी ॥ कह गिरिधर कविराय उपद्रवजोअति दारन ॥ राग द्वेष अपमान मान इनका त्रय कारन ॥२०८॥ रोइ रोइके पाइये रुपिया जिसका नाम ॥ जबजायेफिररोइये इह सुख जिसको काम ॥ इहसुख जिसको काम इसमेंतिसका है रूपी ॥ जिसके हेत मजूरी करैं उठावै कूपी ॥ कह गिरिधर कविराय कई खोजे कर्दम धोइ धोई ॥ पुनः वनिज नौकरीकृषि करै रोइ रोई ॥२०९॥ गई गईपुनि गई रे करके निशि दिन सोर ॥ घड्याल पुकारै और कछु तैं समझी कछु और ॥ तैं समझी कछु और यथारथ ना हम भाषी ॥ तापरइकदृष्टांतसुनो बदरनकी साखी ॥

कह गिरिधर कविराय समझ जब उलटी भई ॥
घटका घटका करके सगरी आयुष गई ॥२१०॥
जैसाकैसा अन्नले भिक्षू करै अहार॥मोटो जीरण
कापडो पहरै तजैविकार ॥ पहरैतजै विकार चीन-
कर अपनी हुदा ॥ उदसीन ह्वै रहै सर्वसे पकरे
मुदा ॥ कह गिरिधरकविराय समीपनराखैपैसा ॥
सोई परमविरक्त भनेहैं शास्त्रहु जैसा ॥ २११ ॥
हुरमत राखी चहैजो समझसमझने योग ॥ समझ
यथारथके भये रहैन कोई रोग॥रहै न कोई रोग
रोगकामूल अविद्या ॥ सो पुनि होवै नाश प्रकाशै
आतमविद्या॥कह गिरिधर कविरायदूरकर दिल-
की दुरमत ॥ परलोकलोकमें बनीरहै ज्योंकी त्यों
हुरमत ॥ २१२ ॥ स्वतंतर अपने भयो जब तज
परतंतर पाप ॥ ब्रह्म लख्यो जिन आपको जपै
कौनको जाप ॥ जपै कौनको जाप करै फिर
किसकी सेवा ॥ भिन्न आपसे देखै ना कोइ देवी

देवा ॥ कह गिरिधर कविराय जपै निशि वासर मंतर ॥ अहं सच्चिदानंद अखंड अद्वितीय स्वतंतर ॥२१३ ॥ तृषावंतको पतित नर पुनः तपायो घाम॥सो नहिं जावै गंगढिगगंगासोंउपराम ॥ गंगासो उपराम सुरसरी तीर न जावै ॥ सुरधुनिको क्या काम जु ताके ढिग चलि आवै ॥ कह गिरिधर कविराय त्योंनखशिख गाँस्यौ मृषा। सो सतसंग न करै संतको क्या है तृषा ॥२१४॥ ग्रही असीकर ज्ञानकी करी अविद्या घात॥लोक ईषणा वासना भई दीनता पात॥ भई दीनतापात सहित देह दृश्य असाता ॥ जात पांत सब गई जगतका टूटा नाता ॥ कह गिरिधर कविराय भ्रांति तिसके डब रही ॥ ब्रह्मविद्याते गही हाथमें जिसने ग्रही॥२१५॥अमूढ पुनः यह मूढहै शुद्ध अशुद्धनिहार ॥ऐसी जिसकी दृष्टि है भ्रमै बीच संसार॥ भ्रमै बीच संसार मरैमर मर फिरजनमें ॥

शोक निवर्त न होइ भेद बुधि जबतक मनमें ॥ कह गिरिधर कविराय लखै जो एक अगूढा ॥ ताको नाहिं कदाचित भासै मूढ अमूढा॥२१६॥ कच्ची जैसी लोड है ऐसो और न पाप ॥ जिसके अंतर कामना करै अनेक प्रलाप ॥ करै अनेक प्रलाप ग्रस्यो जो चाह चमारी ॥ अहंता ममता त्वंता लगी असाध बिमारी॥ कह गिरिधर कविराय वस्तु जब पावै सच्ची ॥ फेर न मनमें रहै वासना लौकिक कच्ची॥२१७॥कोरा देहु जवाब तू सबको हुइ निःशंक ॥ परमवृतिको ग्रहन कर रहै न कोइ कलंक ॥ रहै न कोइ कलंक पंकको सौविध धोवो ॥ अपनी इच्छा विचरो बैठो जागो सोवो ॥ कह गिरिधर कविराय वासना रखो न भोरा ॥ रंच न लागै दाग रहै कोरेका कोरा ॥ २१८ ॥ संग न कोऊ राखिये त्याग आनकी आश ॥ एका एकी

विचारिये तोडि भ्रांतिकी पाश ॥ तोडि भ्रांतिकी पाश रहै वनमें वा जनमें ॥ आतम चिंतन करै सदा निशि वासर मनमें ॥ कह गिरिधर कविराय चढे जब अपना रंग॥किसकी राखै चाह करै पुनि किसका संग॥२१९॥ चार पहर दिन हरबखत चार पहर पुनि रात॥ आतम-चिंतन कीजिये त्यागि अनातम बात ॥ त्यागि अनातम बात प्रसंग न कबहुँ चलावै ॥ अद्वय अखंड अपार आतम मन तिसमें लावै॥ कहगिरिधर कविराय आपको चीनै सार॥ देह मन इंद्रिय प्राण यह मिथ्या जानै चार ॥२२०॥ काल्ह काम करना जोऊ सो तो कीजै आज॥ मूल अविद्या नींदते शीघ्रहि तू अब जाग ॥ शीघ्रहि तू अब जाग आपना कर ले कारज ॥ ऐसो मानव देह फेर कब मिलहीं आरज॥ कह गिरिधर कविराय काटकर भ्रमके जाल ॥ लखो आपको ब्रह्म

कालको जो है काल ॥ २२१ ॥ भोग परम सुख आशका दिलगीरी कर दूर ॥ भावै बेचकरो चफल भावैफुट्ठ कपूर ॥ भावै फुट्ठकपूर पहिर कंबल वा खासा ॥ भावे धरहू ध्यान भावे नित देख तमासा ॥ कह गिरिधर कविराय करो भावे हठयोग ॥ अथवा ज्ञान समाधि करो ब्रह्मानन्द भोग ॥२२२॥ सुनियत है भागीरथी पातकहरनि अपार ॥ पुनः पाप निर्मूलको गङ्गा ब्रह्मविचार॥ गङ्गा ब्रह्म विचार कर्मछेदनकोछैनी॥अविद्या उदर विदारनको जमदाडी पैनी॥कह गिरिधर कविराय जु चितियत कथियत गुनियत ॥ सो सब जान अनातम जो जो श्रवने सुनियत ॥ २२३ ॥

दोहा—परम विरक्तरु ज्ञानिवर, गिरिधरजी कविराज ॥ कुंडलियें यह तिन रचीं जिज्ञासू जन काज ॥ १ ॥ हैं दो सौ तेईस यह, कुंडलियें अतिसार ॥ ताको सम्यक् शोधके, सामकीन इकतार ॥ २ ॥

इति श्रीकविगिरिधरकृत कुण्डलिया प्र० भाग समाप्त ।

॥ श्रीः ॥

अथ कविगिरिधरकृत कुण्डलिया.

द्वितीय भाग २.

जाके जानेते विना, भासित नानाकार ।
जास जानते लीन हो, वन्दों त्रिधा प्रकार ॥
वन्दों त्रिधा प्रकार करों कछु बाग विलासा ।
ब्रह्मविद्या गर्भीत ज्ञानमय नरकी भाषा ॥
कह गिरिधर कवि रचना आश्रय होवत जाके॥
सोनिर्विशेषअकृतिमगिराढिगजायनजाके २२४॥
कहूं कीर्ति वैराग्यकी, कनक कामिनी दोष ।
विधि निषेध खण्डन करूं, हो जिज्ञासु मन होश॥
हो जिज्ञासु मन होश सोइ अब कवित सुनाऊं॥
भेद मतनको खण्ड कछुक पुनि औरभि गाऊं ॥
कह गिरिधर कविराय मोह मद मनका दहूँ ॥
हो अभेदको ज्ञान सोय श्रुति अनुभव कहूँ२२५॥

महिमा जो निर्वेदकी, को कहि सके उदार ।
त्यागी बन्धनसों मुकत, बाकी सब गिरफ्तार ॥
बाकी सब गिरफ्तार दीन आधीन भयोजी ॥
निज स्वरूपकी भूल आपको मान लियोजी ॥
कह गिरिधर कविराय न लागतहैं इक लहिमा ।
जिसक्षण करहैत्यागउसीक्षणहोवतमहिमा २२६॥
परमारथ पहिली सिढी, जासु नाम निर्वेद ।
पामर ताको ना लहैं, पावत हैं नित खेद ॥
पावत हैं नित खेद उसे नहिं त्याग सके सुध ।
मोह मदिरासे मत्त स्वपरकी नहीं रही शुध ॥
कह गिरिधर कविराय जो नरतनुखोव अकारथ॥
बाह्यमुखो होरहे न समझ कछू परमारथ ॥२२७॥
तहँ विरागकी क्या कथा, इन्द्रिय जहँ आराम ।
जौन तौन परकार कर, पोषै हाड रु चाम ॥
पोषै हाड रु चाम बाह्य मुख भये जनूनी ।
करै आपना घात अनातमदर्की खूनी ॥

कह गिरिधर कविराय शांति तिनके है कहां।
विषयजन्य सुख चहै वैराग्य न स्वपनेजहां२२८
जिहासा नाम वैराग्यको, सो है चार प्रकार।
यतमानव्यतिरेक एकेन्द्रियजानलिह्यो वशीकार॥
जान लिह्यो वशीकार सुनो अब तिनका भेदा॥
तीव्र तीव्र तर मन्द त्रिधा विध गावत वेदा॥
कह गिरिधर कविराय सकल सुखकी है आसा।
बडे भाग्य है तिनके जिनके होत जिहासा॥२२९
पुहुमी चामीके अरथ, होवत है नर दीन।
जबै प्राप्ति ताकी भई, बुद्धी होत मलीन॥
बुद्धी होत मलीन पुनः बधिरो हो अन्धा।
विन पाये दांत निकासे ज्यूँ परवशमें बन्धा॥
कह गिरिधर कविराय भाव पंडित हो औमी।
तिनको शांति नरंचजिनोंकोहाटक पुहुमी॥२३०॥
नारी श्रेणी नरककी, है प्रसिद्ध नहिं लुकी।
यथा समान परकीया, तथा जान ले स्वकी॥

तथा जान ले स्वकी तीनको एकै रूपम् ।
अस्थि मांस नख चर्म रोम मल मूत्रहि कूपम् ॥
कह गिरिधर कविराय पुरुष इन कियो अजारी ।
ऐसा दुष्ट न और जगतमें जैसी नारी ॥२३१॥
योषा मूरति पापकी, ज्यहि लख भुले गँवार ।
ठौर देखकर नरकका, सब जन करत खुवार ॥
सब जन करत खुवार भ्रमावत विधि पुनि हरिहर ।
मोहि रज्जु गलबांध नचावत कपिवत घर घर ॥
कह गिरिधर कविराय जोइ नर चाहत मोषा ।
तीव्र गहै वैराग्य तजै हाटक औ योषा ॥२३२॥
अँगना देखाकर अंगको, करै पुरुषको भ्रान्त ।
कान्ता याको कहत हैं, हरे मनुजकी कान्त ॥
हरे मनुजकी कांति नाम तिसका है वामा ।
भ्रमावै नरको बांध कण्ठ दृढ मोहकी दामा ॥
कह गिरिधर कविराय पहिरकर करमें कँगना ॥
सब अनर्थको हेतु कही गृह लावन अँगना२३३॥

नैहर जावे रोयकर, पुनि रोती ससुरार ।
सब जन अबला कहत हैं, है सबला बदकार ॥
है सबला बदकार पुरुषको करती कातल ।
कपि ज्यों नाच नचाय अन्त लेजाय रसताल॥
कह गिरिधर कविराय पिशाचिनि है यह बैहर ।
सबके देत चपेट न छांडति सासरु नैहर॥२३४॥
सम स्वकीय परकीयकी, परी चुडेल रु हूर ।
इनके त्यागे परम सुख, ग्रहण किये दुख भूर ॥
ग्रहण किये दुख भूर पुरुषकी बुद्धि दुरावे ॥
क्षण क्षण फजिहत करति मोह भ्रम तम उपजावे॥
कह गिरिधर कविराय अजै भी समझ दिवाने ।
हूर चुडैल रु परी परकीय स्वकीय समाने२३५॥
तीनों मूल उपाधि की, जर जोरू जामीन ।
है उपाधि तिसके कहां, जाकें नहिं ये तीन ॥
जाके नहिं ये तीन हृदयमें नाहिं न इच्छा ।
परमसुखी सो साधु खाय यद्यपि लै भिक्षा ॥

कह गिरिधर कविराय एक आतम रस भीनो ।
निर्भय विचरे संत सर्वथा तजकर तीनो॥२३६॥
दमरी चमरी बाल गृह, होय नेह इन बीच ।
ऊपर चिह्न विरक्तका, सो दुर्बुद्धी नीच ॥
सो दुर्बद्धी नीच पशू गर्दभकी नाईं ।
उभय भ्रष्ट पापिष्ठ गृहस्थ न भयो गुसाईं ॥
कह गिरिधर कविराय देखावत बजरी अमरी ।
यती लिंगको धार गांठमें बांधत दमरी ॥२३७॥
पैगम्बर, पीर, औलिये, सब मजहबके स्वान ।
मूसे आठो याम ये, बिन मौला पहिचान ॥
बिन मौला पहिचान शहरमें डूबे अहमक ।
बे यकीन मरदूर निखालिस जाफर बुरबक ॥
कह गिरिधर कविराय दुनियबीके आडम्बर ॥
फितनेमें पचमुये औलिये पीर पैगम्बर ॥२३८॥
मौला एकला मह्जब है, जामें मजहब फनाह ।
जेते मजहब जहानमें, सब शैतानके राह ॥

सब शैतानके राह पैगम्बर उम्मत काबा।
रोजा सुनत कुरान शहरका नेब निमाजा॥
कह गिरिधर कविराय यह रस्ता पाया सौला।
जामें मजहब फनाह एकला मजहब मौला॥२३९
योगी डूबे योगमें, भोगी डूबे भोग।
योग भोग जाके नहीं, सो विद्वान अरोग॥
सो विद्वान अरोग अचाह अमान असंगी।
भेद भावसे रहित बुद्धि तिसकी यकरंगी॥
कह गिरिधर कविराय ज्ञान बिन है सब रोगी।
भोगी अटके भोग योगमें अटके योगी॥२४०॥
कलाम बेकैदोंकी कथे, अंतर धँस रह्यो मजहब॥
ख्वाहिश दुनियांकी करै, बेवकूफ सो अजब॥
बेवकूफ सो अजब बडो कोई है सुखौलिया।
मूढ सभाके मध्य कहावे महा औलिया॥
कह गिरिधर कविराय वस्तु दे करै सलाम।
तिसपरमैं अरु तोरसो अहमक सुलाकलाम२४१॥

काम शैतानोंके करे, औलियोंकी शकल ।
सूरत है इन्सानकी, हैवानोंकी अकल ॥
हैवानोंकी अकल सिंहकी गिरा उचारे ।
सिङ्ग रानौकी क्रिया पकड गोबरेडे मारे ॥
कह गिरिधर कवि नरम गरम तर चाहेताम ।
भिक्षा खावे मांग यही ऊननके काम ॥ २४२ ॥
नाना लिप्सा हृदयमें, बन बैठे उलियाय ।
ऐसे पीर मुरीदको, दोनोंको जुतियाय ॥
दोनोंको जुतियाय मगज कर तिनका पोला ॥
पैरौं लाके देइ धडाधड जूता सोला ॥
कह गिरिधर कविराय पहिर फकीरोंका बाना ॥
अजों न लिप्सा तजे जूत तिनके शिर नाना२४३
बाता करे बतूनियां, प्राकृत जन मध फूल ॥
पूँछन वालो जो मिले, जाय फारसी भूल ॥
जाय फारसी भूल प्रबल कोइ फुरे न युक्ती ।
बाग बैखरी रुके न मुखसे निसरे युक्ती ॥

कह गिरिधर कविराय मूढ मिलकर कम जाता ।
सर्व पक्षसे रहित बनावै घरमें बाता ॥ २४४ ॥
आश्रम वर्ण कुल, पन्थमें, जाका है आवेश ।
ब्रह्मविद्या ता हृदयमें, नाहीं करत प्रवेश ॥
नाहीं करत प्रवेश लिप्र ज्यों श्वपच अगारा ।
बहु बीथीके डगर बहू निकसत वाग द्वारा ॥
कह गिरिधर कविराय भ्रमे भ्रममें निशिवासम ।
जाका है आवेश पंथ कुलवर्ण मधि आश्रम२४५
धन्यो कांच सन्दूकमें, रत्न चुराहै डार ।
कुत्ती पाली गेहमें, दीनी धेनु निकार ॥
दीनी धेनु निकार बडो बुधिवन्त कहावे ।
रजत कीचमें मेलि चामके दाम चलावे ॥
कहगिरिधर कविराय जान निज रत्न परिहन्यो ।
पुरुष साध्य कर्तव्य हृदय सन्दूक ले धन्यो२४६॥
कौडीवाले साधुको, कौडी मिले न दाम ।
कौडी विना गृहस्थका, कोई लेय न नाम ॥

कोई लेय न नाम जहाँ तहँ होय अनादर ।
छोड जातसब तिसे पिसर औ पिदर बिरादर ॥
कह गिरिधर छवि दुनियाँ तिनके रहै कनौडी ।
सो गृहस्थ परधान चार हैं जिसेपै कौडी ॥२४७॥
दारा मरै गृहस्थकी, खाना तिसे खराब ।
राखै रांड फकीर जो, रहै न तिनकी आब ॥
रहै न तिनकी आब उभय आलमसे जावे ।
ना वह रह्यो गृहस्थ फकिरका पद नहिं पावे ॥
कह गिरिधर कविराय शोक जो सिन्धुकि धारा ।
सो नर तिसमें बहै अहै जिसके गृह दारा २४८॥
रस सह देखे यती जो, कनक कामिनी होय ।
तिसी समय वह पतित हो ब्रह्महत्यारा होय ॥
ब्रह्म हत्यारा होय तेज सब हत होजावे ।
मनकी शक्ती चक्षु वाणि ये सकल पलावे ॥
कह गिरिधर कविराय एक मन औ इंद्रिय दश ।
तिनको करै निरोध त्यागकर लौकिकजेरस२४९

तन दुरुस्तसे होते हैं, विषय जन्म सुख भोग ।
धन दुरुस्तसे फिरत हैं आगे पाछे लोग ॥
आगे पाछे लोग जो मनकी होय दुरुस्ती ।
भोगै ब्रह्मानन्द अविद्या करै न सुस्ती ॥
कह गिरिधर कविराय विवेकी जो हैं हरिजन ॥
मनको करै दुरुस्त दुरुस्त न चाहै धन तन२९०
धनी पुरुषके रहत है, कां कां चारों ओर ।
निर्धनके भां भां रहै, मध्याह्न सांझ पुनि भोर ॥
मध्याह्न सांझ पुनि भोर प्रमादी दोनों दुखिये ॥
अज्ञान आवरण विक्षेप रहित जो सोई सुखिये ॥
कह गिरिधर कविराय बात तिसकी सब बानी ।
तिसको जैसा राव रंक ठग तैसा धनी ॥२९१॥
बनी बनाई छोडिये, कोउ धरे नहिं नाम ।
मत बिगार कर जोइये, बहुरि भिआवे काम ॥
बहुरि भिआवे काम सरुश जो और कालमें ।
सो विचार कर करो न धोखा पडे मालमें ॥

कह गिरिधर कविराय विना परिग्रह सो धनी ।
जिसकी बुद्धि अद्वितीयबाततिसकीसबबनी२५२
राग चिह्न अज्ञानका, चित व्यायाम बखान ।
तिस तरुमें सबजी कहां, जिस कोटर किरशान ॥
जिस कोटर किरशान लता फल रहन न पावे ।
त्यों शब्दादिमें पीत जहां तहँ ज्ञान पलावें ॥
कह गिरिधर कविराय विषयका कर दे त्याग ।
आत्मार्चिंता कररहो नहीं हो लौकिक राग२५३
बाल तरुण अरु वृद्ध यह,अवस्था तनुकी तीन ।
तीनोंमें जो अन्तकी, अति कनिष्ठ यह चीन ।
अति कनिष्ठ यह चीन करे धीको विपरीता ।
विस्मरण शास्त्र सो होत जो पूरव कियो अधीता॥
कह गिरिधर कविराय जाति सब ख्वाब खयाल ।
अविद्याका परिणाम न समझतहै वृधबाल॥२५४
जरा अवस्था सदृश नहिं, नीच अवस्था आन ।
अभिव्यञ्जकसब रोगकी,किरपणताकी खान ॥

किरपणातकी खान करै तृष्णाको जारा ।
वैराग्य तोष पुरुषार्थ काटनेको है आरा ॥
कह गिरिधर कविराय उदारताको है गरा ।
लोभ मोह युग पुष्ट होय जब आवै जरा॥२५५

थविरावस्था अधमतर, सबजनको सो अनिष्ट ।
स्वपरनको फीकी लगै, नाहिं किसीको इष्ट ॥
नाहिं किसीको इष्ट करे तनुको बदरंगा ।
शक्ती होवे क्षीण शिथिल पड़ जावें अंगा ॥
कह गिरिधर कविराय नजीक न आवे सबर ।
वैराग्य कमलमुर्झात आवे जब रजनीथविर२५६

तुच्छ अवस्था वृद्ध है, करै चित्तको दीन ।
शिथिल शरीर स्थूल हो, कायरता हो पीन ॥
कायरता हो पीन वैराग्य पडजावे ढीला ॥
तितिक्षा सही न जाय रची भगवत यह लीला॥
कह गिरिधर कविराय ब्रह्म अद्वितीय जो पुच्छ ।
जिसको है साक्षात सो तरे अवस्था तुच्छ॥२५७

निसबत तेरी किसीसों, ना है न थी न होग ।
मुहबत जिन सँग करे तू, सब सरायके लोग ॥
सब सरायके लोग समझकर पकड कायदा ।
समझेगा जिस वक्त तुझे तब होइ फायदा ॥
कह गिरिधर कविराय जिसमकी जेती किसमत ।
तितनोहीतिसहोयन जिस्मीकोकोइनिसबत २५८
बेटो बेटी भानजा, भाइ श्वशुर अरु सार ।
पिता पितामह आदिले, सब मतलबके यार ॥
सब मतलबके यार नहीं इनमें कोइ तेरो ।
भयो तुझे परमाद जो इनको बन रह्यो चेरो ॥
कह गिरिधर कविराय, सबनसे झगरा मेटो ।
ना तू बाप किसीको,तेरो कोइ ना बेटो॥२५९॥
ममता सुत वित नारिमें, त्रय तनुमें हंकार ।
निज आतम विज्ञान बिन, चारौ वर्ण चमार ॥
चारौ वर्ण चमार पुनः चारोंही आश्रम ।
प्रत्यक बोध विहीन नीच जानो बिन विभ्रम ॥

कह गिरिधर कविराय नाहिं तिनकेदिल समता।
त्रय तनुमें हंकार नारि सुत वितमें ममता॥२६०
ढबुये बबुये बानको, किसने किया फकीर।
ढबुये बबुयेते विना, गृहस्थी महा जहीर॥
गृहस्थी महा जहीर वो तो दुनियांका लौंडा।
मरम फकीरीका लिया जानै पागल शौंडा।
कह गिरिधर कविराय खरीद हथैडे ढबुये।
फकिर नहींपाखण्डी पतित जो राखतढबुये २६१
लडका लडकी भानजा, काचे तीन मशान।
अंतर करें प्रवेश यह, देत न इत उत जान॥
देत न इत उत जान बुद्धि टुकड़े कर डारत।
होवे दृष्टि विपर्यय अन्यको अन्य निहारत॥
कह गिरिधरकविराय मिटे नहिं दिलका धडका।
जिनके हैं धन धाम मेहरी लडकी लडका॥२६२॥
संसार दशाको देखके, बोले शेख फरीद।
रांडा बन रही पीर खुद, हूरा मरद मुरीद॥

हूरा मरद मुरीद भूलकर अपनी अदमीयत ।
अनं होये जालमें बँधे दुःख बिन दुखियेथीयत॥
कह गिरिधर कविराय चले जब श्रुति अनुसार ।
समूल जगत होय नाश फेर ना हो संसार॥२६३॥
घिरत तैल तण्डुल लवण, तक्र रु ईन्धन रास ।
निशिदिन चिंतन जो करै,विपुल बुद्धि होनाश ॥
विपुल बुद्धि हो नाश किया कुण्ठित सो पीनी ।
स्थूल पदारथ गहै वस्तु नहिं पावै झीनी ॥
कह गिरिधर कविराय करत विषयनमें निरत ।
मिश्री दुग्ध जलेबी बरफी चाहे घिरत ॥३६४॥
नाहीं जानत आपको, ताको है धिक्कार ।
श्वान वमनके तुल्य है, जो वह करै अहार ॥
जो वह करै अहार सो तो है पुरिष समाना ।
प्रत्यक ब्रह्म अभिन्न नहीं जिनके यह ज्ञाना ॥
कह गिरिधर कविराय तपे त्रय तापनमाहीं ।
ताको है धिक्कार आपको जानत नाहीं ॥२६५॥

लोभ पापका बीज है, रस व्याधीका बाप ॥
राग कैदका बीज तज, तीन सुखी हो आप ॥
तीन सुखी हो आप ताप नहिं तुझे तपावे।
भवनिधि तरे सुखेन फेर नहिं गोते खावे ॥
कह गिरिधर कविराय न तुझको व्यापै क्षोभ।
काम वृत्तिकेसहित त्यागताजिसक्षण लोभ॥२६६
राँड साँड पुडि भाँड़ जो तजके इनका संग।
जहँ तहँ विचरै भूमिपर, करै वासना-भंग।
करै वासना-भंग वृत्ति अन्तर-मुख राखे ॥
ब्रह्म विद्या बिनु और कछू ना सुनै न भाषे।
कह गिरिधर कविराय तीन शिर राखे डांड ॥
काया वाणी मनहुपर सोहबत करै न रांड २६७
दोष स्थूल शरीरमें, एक दोय नहिं कोट।
पुनि जो एक कृतघ्नता, या सम और न खोट।
या सम और न खोट जो निमकहरामी सोगा।
नित शुश्रूषा करत फेर ना रहै अरोगा ॥

कह गिरिधर कविराय अनातम पांचो कोष ।
सबसों हो उपराम चीनकर बहुधा दोष ॥२६८॥
रहै न जिसके विना दिन, तीस प्राणमय कोष ॥
सो निशंक ह्वै मांगिये, मांगनमें नहिं दोष ॥
मांगनमें नहिं दोष ग्लानि कहँ सब तज दीजै ।
जैसे तैसे जहां तहांते भिक्षा लीजै ॥
कह गिरिधर कविराय परमसुखको जो चहै ।
उदासीन हो सबसे अन्तरमुख हो रहै ॥ २६९ ॥
देवी वपुरी घासकी, गोबरका नैवेद ।
जैसे नरके भाग्य हैं, तैसे सुख पुनि खेद ॥
तैसे सुख पुनि खेद तथा अपमान जु माना ।
कर्मनके अनुसार मिले पट भूषण खाना ॥
कह गिरिधर कविराय छोड़कर देवा लेवी ।
तिसका चिंतन करोअरोपितजिसमें देवी ॥२७०॥
धीरे धीरे जायगा, सब देवनको साथ ।
मूर्ति काष्ठकी ही रहे, बाबा पारसनाथ ॥

बाबा पारसनाथ एक शिव चिद्धन जोई ।
तिसके विन यह नाम दृश्य हू रहै न कोई ॥
कह गिरिधर कविराय अमोलक रत्न जु हीरे ।
जिसके आगे तुच्छ लखो तिहि धीरे धीरे॥२७१॥
वायस वानर ऊंधरे, उपदेश करत हैं खरे ।
यह सब ऐसा दुष्ट है, संगहुते न टरे ॥
संगहुसे न टरे बाह्यमुख भयो विकारी ।
कृपण दीन बन रह्यो लगी तृष्णा अति भारी ॥
कह गिरिधर कविराय नाश जब होय खवाहिस ।
तब उदारता जगे त्यागि पुनि वृत्ती वायस२७२ ॥
खाली रहे न एक दिन, रस्तेकी जु सराय ।
भलो बुरो उतरो रहै, इत उतसे कोइ आय ॥
इत उतसे कोइ आय रैनि बसि आगे जावे ।
तिसके पीछे दूसर और मुसाफिर आवे ॥
कह गिरिधरकविराय दाष्टान्त जो सोसुनहाली।
सुख दुख इष्टानिष्ट विनातनु रहै न खाली॥२७३॥

जेठो मँझलो पुरुषको, भाइ अन्नमय कोष ।
यामें हन्ता करी ते, वामें किया है दोष ॥
वामें किया है दोष तलासी लीजै लाला ।
तिसते इसमें विमल निकसियो कौन मसाला ॥
कह गिरिधर कविराय अधम मल जैसो हेठो ।
ताते कमती नाहिं सुजानो भैया जेठो ॥ २७४ ॥
आपा जाकर करे तू, जनजनके सँग मेल ।
जिस दिन त्यागे कामना, कोउ न करे झँमेल ॥
कोउ न करे झँमेल आयकर ढिग पुनि तेरे ।
ना कोउ पूछे बात न कोऊ तुझको हेरे ॥
कह गिरिधर कविराय मिटे तब तीनों तापा ।
उदासीन हो रहै सर्वसे जब तू आपा ॥२७५॥
सवाल करै ना तनक भर,विना अन्न अरु तोय ।
क्षुधा पिपासा हरनको भिक्षा मांगै दोय ॥
भिक्षा मांगै दोय त्याग दे सर्व वासना ।
मन वाणीको रोक जौन ज्यों करै शासना ॥

कह गिरिधर कविराय पंचकोश तो दिवाल ।
तिसते होवे पार कूदकर तजे सवाल ॥ २७६ ॥
भूख विधाताने रची, सबका हरै गुमान ।
क्षुधा निवारणके अरथ, क्या नहिं करै पुमान ॥
क्या नहिं करै पुमान विहित अविहित ना देखै ।
खाऊँ खाऊँ करै रु भक्ष्याभक्ष्य न पेखै ॥
कह गिरिधर कविराय न ऐसा जगमें दूख ।
त्रय-लोकीमें जैसी यह व्यापी है भूख ॥२७७॥
रोग ग्रसै जब देहको, होवे बुरा हवाल ।
ना तब दे दीदार खुद, ना पुनि करै जमाल ॥
ना पुनि करै जमाल किसीसे जाकर धोरे ।
जो कोइ आवे पास कहे तिस पाछे हो रे ॥
कह गिरिधर कविराय चित्तको दाहे सोग ।
पूर्वोक्त प्रकार करै तौ फिर लागे ना रोग ॥२७८॥
तजके दवा हकीमकी, पान करे गँगवार ।
देहपातसों ना डरै पुनि दृढ करै विचार ॥

पुनि दृढ करै विचार याहिमें परम निरञ्जन ।
अक्लेद्यअदाह्य अशोष्य अदुःख सोहे भवभञ्जन ॥
कह गिरिधर कविराय कथे निःसंशय गजके ।
अहंकालके काल वैद्यकी ओषधि-तजके ॥२७९॥
वैयाकरण जो कहत हैं, जाका नाम है स्फोट ।
चतुर षष्ठ दश अष्टकी, वही लक्ष्यपर चोट ॥
वही लक्ष्यपर चोट चलावे रोच कमाना ।
तीरन्दाज अनेक सर्वका एक निशाना ॥
कह गिरिधर कविराय पडो मन तिनकी शरण ।
जाका नाम स्फोट कहत है वैयाकरण ॥ २८० ॥
गंग पाप, शशि ताप हर, कल्प दरिद्रहिं चूर ।
पाप ताप अरु दीनता, सन्त संग हो दूर ॥
सन्त संग हो दूर अविद्या आदि कलेशू ।
संशय शोक विपर्यय भ्रमको रहै न लेशू ॥
कह गिरिधर कविराय शुद्ध जिनका मग चंगा ।
सो भोगत ब्रह्मानंद कठौती तिनको गंगा॥२८१॥

मिलनो जाकर जनोंको, आछे तीन प्रकार ।
स्वारथ परमारथ लिये, परम सनेही यार ॥
परम सनेही यार पायकर कीजै मेला ।
इन बिन और न संग एक पग चले न भेला॥
कह गिरिधर कविराय चौथेके सँग जो मिलनो ।
बेवकूफको काम सो नाकिस ऐसो मिलनो२८२॥
मतलब होय पुमानको, बसे श्वपचके धाम ।
विना प्रयोजन विप्रको, कथन करै नहिं नाम ॥
कथन करै नहिं नाम न जावे वाके धोरे ।
जो आवे वह पास कहै तिहि पाछे हो रे ॥
कह गिरिधर कविराय खायके जावे सतलब ।
तऊ न माने देख तुच्छजो अपनो मतलब २८३॥
हुई बौरकी बुद्धि तिस, जिसको भडकी पौन ।
वचन अवाच्य यदा तदा, बकै सर्वथा तौन ॥
बकै सर्वथा तौन भवन तजि बाहर जावे ।
क्षण नाचै क्षण कुदै क्षणकमें भस्म उड़ावे ॥

कह गिरिधर कविराय धँसी जाके दिल हूई ।
क्या नहिं करै प्रलाप विश्व लोलुप धी हूई॥२८४॥
अकलके घाटा जहँ तहां, कौन दुःखकी कमी ।
काम क्रोधकी दयासे, जहां जाय तहँ गमी ॥
जहां जाय तहँ गमी नजीक न आवे शादी ।
तृष्णा सहित अविद्याकी जहँ मिहर अनादी ॥
कह गिरिधर कविराय ये कीने उपजे हक्कल ।
जबलग पैदा होय न घरकी नूरी अक्कल ॥२८५॥
बूझी बात निपालकी, बता खूबरो रान ।
ऐसी बुद्धीका धनी, क्यों न होय बीरान ॥
क्यों न होय बीरान जासमें हुई बदरगी ।
मांग्यो गुले अनार पकडकर ल्यायो मुरगी ॥
कह गिरिधर कविराय ढिगपडी वस्तु न सूझी ।
ऐसो उत्तर दियो जो पूछे बात न बूझी ॥२८६॥
अनात्ममेंआत्मा-बुद्धि,अशुच शुच दुखसुखधार।
अनित्य विषेबुद्धि,नित्यजो अविद्या चारप्रकार ॥

अविद्या चार प्रकार समझ ले कारज तूला ।
जो अपनो अज्ञान सोइ है काणा मूला ॥
कह गिरिधर कविराय दिखे जब एक परातम ।
तभी सर्वथा नष्ट होय जो बुद्धि अनातम ॥२८७॥
अकड अविद्या आवरण, विक्षेप कँपवा तरुण ।
जकड लिये युग रोगने, वैराग्य विवेक दो चरण॥
वैराग्य विवेक दोचरणविना चलियो नहिंजावे ।
निशि दिन रहै कलेश मोक्षपद कैसे पावे ॥
कह गिरिधर कविराय छोड दुनियांके मक्कड ।
ज्ञानरसायन सेव नष्ट हो कँप अरु अक्कड॥२८८॥
भ्रम लिप्सा कारण पटव, पुनः प्रमाद अधर्म ।
चतुर दोषकर दुखित जो,नहिं जाने श्रुतिमर्म ॥
नहिं जाने श्रुति मर्म पुरुष अपराध न नाशे ।
सम्यक बोध न होय यथारथ तत्त्व न भासे ॥
कह गिरिधर कवि बँधे अविद्या काम रु कर्मा ।
कर्णा पाटव्रता प्रमाद जिहिं लिप्सा भर्मा ॥२८९॥

कृपा देह अध्यासकी, अविद्याको परताप ।
बेमुख भये स्वरूपते, जपै अनातम जाप ॥
जपै अनातम जाप न सारासार विचारे ।
लौकिक शब्द विचित्र परस्पर बैठि उचारे ॥
कह गिरिधर कविराय आपको मान्यो स्रपा ।
रचे मलिन संकल्प देह अध्यासकी कृपा॥२९०॥
करनो जो सो ना करै, मिलि देहेन्द्रिय साथ ।
आक ढाक बब्बूलमें, फिरे डारतो हाथ ॥
फिरे डारतो हाथ निकम्मे रचे पँवाडे ।
आयू दीना खोय मुफ्त इन भँगके भांडे ॥
कह गिरिधर कविराय होगो तब तेरो तरनो ।
कृतकृत चीने आप छोडकर सगरो करनो॥२९१॥
करुणा हो श्रीरामकी, औ गुरुको परताप ।
पुनि पुरुषारथ आपनो, कटै अविद्या पाप ॥
कटै अविद्या पाप जुडै जब यह संयोगा ।
देहेंद्रियमन प्राण माहिं कोइ रहे न रोगा ॥

कह गिरिधर कविराय छुटै जब जन्म रु मरना।
कृतकृत भयो पुमान बहुरिकछुरहेनकरना॥२९२॥
चोरी जारी झूठ हैं, विद्याके प्रतिकूल।
ताते त्यागैं सन्त जन, हैं अनर्थको मूल॥
हैं अनर्थको मूल नाम तिनका मत लीजै।
श्रवणो भी नहिं सुनै चित्तमें रंच न दीजै॥
कह गिरिधर कविराय भई तिनकी मति भोरी।
मुखसे बोलत झूठ करत जो जारी चोरी॥२९३॥
दलाली क्वैलेकी करे, अरु कर काले वदन।
काले होवें कापडे, कालो ही सब सदन॥
कालो ही सब सदन रदनको कालुष लागे।
नख लौं शिख पर्यन्त जहां तहँ स्याही दागे॥
कह गिरिधर कविराय मूढ सो भ्रमी पलाली।
आतम विद्या विना करै जो और दलाली॥२९४॥
राशी है सब शल्यकी, यह जो भौतिक देह।
अनात्म रूप पहँचानके, त्यागो सकल सनेह॥

त्यागो सकल सनेह चीन क्षणभंगुर मायिक ।
आतमसों कर प्रीति प्रीतिके जो प्रभु लायक ॥
कह गिरिधर कविराय तुझे फिर होय न हांसी ।
जब चीन्है तीन शरीर असतजडहैदुखराशी२९५
रकम भुलाई बद बखत, ऐसो भयो बेहोश ।
हिसाब न समझे अकिलबिन,देत औरको दोष ॥
देत औरको दोष यही तौ बडी खराबी ।
तकब्बुर मदिरा पान कियो बन रह्यो शराबी ॥
कह गिरिधर धोखे चन्दनके लै आयो बकम ।
घरमें पेड मलागरको नहिं चीन्हत रकम ॥२९६॥
भैंस दुहै मधि छालही, ईश्वर दोष धरै ।
जैसी हम सँग करी विधि, वैरीके न करै ॥
वैरीके न करै पडोसिनको दे गारी ।
इस जादू कियो अपार होवे रंडा मुहँकारी ॥
कह गिरिधर कविराय अवशकी चाहै ऐस ।
जामें छिद्र हजार तासुमें दोहै भैंस ॥ २९७ ॥

श्रावण पृथिवी पर सुवे, पूस बिछावै खाट।
सो नर कैसे कै बचै, चलै जेठमें बाट॥
चलै जेठमें बाट होय नित तिनका मरना।
वाके नाश निमित्त और ऊपाय न करना॥
कह गिरिधर कविराय जो पकडै अपनो दामन।
जन्म मरणसे बचे सुवे जहँ इच्छा श्रावण॥२९८॥
कारीगरके कसे बिन, सूधो होय न काठ।
वैयाकरणोंके विना शुद्ध न होवे पाठ॥
शुद्ध न होवे पाठ बात जो अतिशय पीनी।
कहु तत्त्वज्ञ गुरु विना वस्तु क्यों पावे झीनी॥
कह गिरिधर कविराय अविद्या जावै मारी।
महावाक्य गुरुद्वार बाण जब लागै कारी॥२९९॥
नटुएका शागिर्द जो, फांदत कूदत तात।
वारवधूका सोहबती, नाचै दिन अरु रात॥
नाचैं दिन अरु रात जो जिनकी संगति करहै।
तिसका हुन्नर सीख लेत सब तद्वत रह है॥

कह गिरिधर कविराय शिष्य पटुएका पटुआ ।
बेनवाका बेनवा शिष्य नटुएका नटुआ ॥३००॥
सोलै कला प्रपंच जो, तिनमेंकी इक कला ।
संसारी बूझत तिसे, है प्रवृत्तिका लला ॥
है प्रवृत्तिका लला पडचौ अभ्यास कूपमें ।
विना रज्जु विन संगल बांध्यों नाम रूपमें ॥
कह गिरिधर कविराय ग्रंथि जब चिदजड खोले ।
जानै जगतअसार अवयव हैं जिसके सोले॥३०१॥
करण ग्राम अध्यात्म है, विषय सर्व अधिभूत ।
अधिदैविक पुनि देव है, त्रिपुटी लख अवधूत ॥
त्रिपुटी लख अवधूत रजो तम सतगुण रूपा ।
आतम त्रिगुणातीत चिदानन्द स्वरूप ॥
कह गिरिधर कविराय पडे जो गुरुकी शरण ।
तिस जनको हो ज्ञान रजोगुण सँगरै करण ॥३०२॥
वृषभवृषभयुग मिले तब, जब किय सिंह तिपात ।
बहुरि वृषभ उत्पति भयो, इन यों कुल संघात ॥

इन यों कुल संघात जनक जननी सब भ्राता।
कन्याका कर घात सहित निज अपनो गाता॥
कह गिरिधरकविरायभणितसनकादिकऋषि सभ।
होय मेषको नाश जभी उपजे निज वृषभ॥२०३॥
मेष मेषको मेषसों, हो रह्यो मकर विशेष।
मकर भयो जब मकरको, वही मेषको मेष॥
वही मेषको मेष मेषने मेष निदारचो।
दियो कुम्भको फोड मीनको उदर विदारचो॥
कह गिरिधर कविराय मिटाई मनकी रेष।
मिथुन करकयुग वृश्चिक कीये हुए तुला मेष२०४
अध्यातम अधिभूत पुनि, अधिदैविक लखिलेहु।
अभ्यास विस्मरण गरभ, और चार ज्वर एहु॥
और चार ज्वर एहु तीन हैं जाके अन्तर।
पंडितको है सात तास कर तपे निरंतर॥
कह गिरिधर कविराय एक ज्ञानी परमातम।
जामें रोग न शोक पाप ना पुण्य अध्यातम२०५॥

जिनकी अपने वाक्य पर, आप नहीं विश्वास॥
मूढनके उपदेश पर, कैसे जा अध्यास ॥
कैसे जा अध्यास कपट लिय बोलत वाणी ॥
कथै और करै और सो केवल है अज्ञानी ॥
कह गिरिधर कविराय समझकी लेस न तिनको ।
आपनहीं विश्वासवाक्य अपनेपर जिनको ३०६॥
बेधे शर सँग रोम इक, ऐसा तीरंदाज ।
चूक पडे तो पर्वता, बेइल्मोंका शिरताज ॥
बेइल्मोंका शिरताज जगतमें बड़ो चुनारा ।
वेध सके नहिं दीर्घ गिरी पुनि थूल मुनारा ॥
कह गिरिधर कविराय मेरु छलको नहिं भेदे ।
जानलई यह विद्या कचकोक्यों नहिं बेधे॥३०७॥
ज्ञानी पुरुष बेकैद हैं, अज्ञानी जन कैद ।
परमेश्वर इक वैद्य हैं, औरहु सबै अवैद ॥
औरहु सबै अवैद चिकित्साकार हैं जेते ।
लोभी कपटी बोध-शून्य निश्चय कर तेते ॥

कह गिरिधर कविराय कहांलग कथों कहानी।
ज्ञानी जन बेकैद पुरुष है कैद अज्ञानी ॥३०८॥
संग नहीं गो गधेको, सैंधव सिता न मेल।
विङ्गराह सँग इन्द्रको, शोभित नाहिंन केल॥
शोभित नाहिंन केल तेल घृतको नहिं योगा।
चक्करवर्ती भूप खरी सँग करै न भोगा॥
कह गिरिधर कविराय ज्यों योगी चहै न दंग।
त्यों प्रवृत्ति निवृत्ति पुरुषको बनै न कबहूं संग३०९
कर्म जो अष्ट प्रकारके, कहे जैन मतमाहिं।
सो सब धर्म अनातसा, आतममें कछु नाहिं॥
आतममें कछु नाहिं याहिमें हेतु बखानो।
कर्ता विना न कर्म आतमा अक्रिय मानो॥
कह गिरिधर कविराय त्याग किरिया सब भर्म।
उदासीन निस्संगविषे कहु कैसे कर्म॥ ३१०॥
उपास्य उपासक भाव जो, एता माने भेद।
जन्म मरण भयको लहै, धिक्कारकरेत्यहिवेद॥

धिक्कार करे त्यहि वेद देव सब करें निरादर ।
तत्त्वविदोंकी सभामाहिं पावे नहिं आदर ॥
कह गिरिधरकविराय आपको आपै नाशक ।
जो एतो मानेभेदभाव ऊपास्य उपासक ॥ ३११ ॥
दास कहावे बावरो एकातमके माहिं ।
उपास्य उपासक भाव जो, सो स्वप्नेहू नाहिं ॥
सो स्वप्नेहू नाहिं जागृतकी कौन कहानी ।
अद्वैरूप अखंड पाइये नहिं जहँ बानी ॥
कह गिरिधर कविराय देखो यह अजब तमासा।
एकातमके माहिं कहावे बौरे दासा ॥ ३१२ ॥
ईश अनादी शुद्ध चिद, जीवेश्वरको भेद ।
अविद्या चिद संबन्धयह, षट् अनादि कहवेद ॥
षट् अनादि कह वेद पञ्चते अन्तवान है ।
ब्रह्म अनादि अनन्त भेद बिन श्रुती मान है ॥
कह गिरिधर कविराय सो मूरखविश्वेवीस ।
जो वास्तव माने भेद करै ताको ईश ॥ ३१३ ॥

वैदिक लौकिक शुध अशुध, पावत है परयोग ।
अधिष्ठान कल्पित सबै, ताते त्यागन योग ॥
ताते त्यागन योग सर्वथा सर्व नियन्तर ।
परा पश्यन्ती मध्यमा, वैखरी वाक् परतन्तर ॥
कह गिरिधरकविराय असतजड दुखमयकैदिक ।
यावतहैं परयोग जानने लौकिक वैदिक ॥३१४॥
धारे अर्थ अनेकको, धातू कहिये येव ।
तैं धारचो सब जगतको, तू चिद धातू देव ॥
तू चिद धातू देव दिखे जब वैभव अपना ।
तब होवे कृतकृत्य रहै नहिं कोई कलपना ॥
कह गिरिधर कविराय पुरुष अपनेको तारै ।
वाक्य अर्थ अखंड जबी आभ्यन्तर धारै ॥३१५॥
कृषी शब्दका वाच्य भू, णका अर्थ आनन्द ।
दोनोंकी जो एकता, सो हैं कृष्ण मुकुन्द ॥
सो है कृष्ण मुकुन्द ब्रह्म अद्वितीय अखण्डा ।
सह विलास आरोपित जामें माया रण्डा ॥

कह गिरिधर कविराय जो सूक्षम दर्शी ऋषी ।
जाके सत्य बखाने ताको वाचक कृषी ॥३१६॥
शक्ति कृष्ण जो देवकी, राधा कारण जगत ।
अनिर्वचनीय अनादि अज, अव्याहृत अव्यक्त ॥
अव्याहृत अव्यक्त अघटना घटन पटीसी ।
विन उपकरण प्रपञ्च रचे नानाविध नटीसी ॥
कह गिरिधर कविराय करावे तबलग भक्ती ।
जबलग पुरुष न लखै कृष्ण अहंराधा शक्ती ३१७॥
तूहि शुद्ध परमातमा, तूहि सच्चिदानन्द ।
चतुर्वेद यों कहत हैं, व्यास वशिष्ठ मुकुन्द ॥
व्यास वशिष्ठ मुकुन्द तत्त्ववित यावत भूसुर ।
परमेश्वर अद्वितीय न भाषि तुझे विन दूसर ॥
कह गिरिधर कविराय धार सो निश्चय हूही ।
तुही सचिदानन्द शुद्ध परमातम तूही ॥ ३१८ ॥
तनी तुही कोई तुही, पिण्डी अरु क्षेत्रज्ञ ।
तुही शरीरी तू देही, तू जिस्मी आत्मज्ञ ॥

तू जिस्मी आत्मज्ञ तुही तू साक्षी रूपा ।
तू प्रत्यक कूटस्थ तुही है ब्रह्म अनूपा ॥
कह गिरिधर कविराय तुही तो चिन्तामनी ।
कामधेनु तुहि कल्पतरु तूही तनुतूही तनी॥३१९॥
वेणु पात्र मृन्मय करे, आलाबू पुनिदार ।
भिक्षुको चारों विहित हैं, मनु मणियो निर्धार ॥
मनु भणियो निर्धार एक इनमें कोउ राखे ।
पात्र भेद ना करै यती संग्रह बुधि नाखे ॥
कह गिरिधर कविराय धातुका छुहै न रेणू ।
जल आनन हित गहै तुंबिका अथवा वेणू॥३२०॥
कपरा जिसका दशो दिग, जहां रहे तहँ पास ।
अन्नोदककी ना कमी, फेर कौनकी आश ॥
फेर कौनकी आश आश जिसके सोया जी ।
भावे होवे पंडित अथवा मूरख काजी ॥
कह गिरिधर कविराय सन्तको मिले जु छपरा ।
दो लकडीकी धुनी फेर ना चाहे कपरा ॥३२१॥

मांगन गये सो मर रहे, मरेसे मांग न जाय ।
मांगन खानो फकिरको अव्वल सेरा जाय ॥
अव्वलसेराजाय सो तो पुनि इसको किसको ।
और किसीकी नाहिं इसीकी है पुनि इसको ॥
कह गिरिधर कविराय वैराग्य विवेक जो टांगन ।
तापकरन असवारी जावे पुनि भिक्षा मांगन॥३२२
कम खानेते जात है, थूल देहके रोग ।
गम खानेसे लिंगमें, व्यापत नाहिंन शोग ॥
व्यापत नाहिंन शोग दूर होवति दुचिताई ।
क्रोध दंभ हंकार लोभहू रहे न राई ॥
कह गिरिधर कविराय वासना त्याग कह्यो शम ।
इंद्रियवताजि जो चञ्चल सो भी होत जात कम३२३
टुकडा लेकर खाइले, आसन राखै फर्क ।
जन समूहमें जायके, कबू न होवे गर्क ॥
कबू न होवे गर्क ईन है यही फकरकी ।
जौन तौन परकार त्याग दे बात मकरकी ॥

कह गिरिधर कविराय संग्रह करे न टुकरा ।
कामिल सोई फकीर मांगकर खावे टुकरा॥३२४॥
खुशी सहित गुजरान है, मसत फकीरनकी ।
कभी तो मुष्टी चनेकी, कभी खांड पुनि घी ॥
कभी खांड पुनि घी कभी पहिरे मश्मीना ।
कभी जर्जरा कन्था ओढे होत न दीना ॥
कह गिरिधर कविराय शांतिवृति जिसकी पुशी ।
तिसको नहिं दलगिरी व्यापे इकरासखुशी३२५॥
लाग्यो मन जिस फकरका, महजब फकिरीमाहिं ।
कैद मजहबियोंकी जोऊ, तिसमें आवत नाहिं ॥
तिसमें आवत नाहिं जो वहिमियो किया कनूना ।
जो जो कथे कलाम सुईसो महा कनूना ॥
कह गिरिधर कविराय फकर गफलतसे जाग्यो ।
फिरकबही गिरफ्तारीरन्दगीमें मन लाग्यो ३२६॥
हजर न ज्ञानी पुरुषकी, देह पातमें वीर ।
रीर पात होय श्वपच गृह, अथवा गंगानीर ॥

अथवा गंगानीर मरुस्थलमें वा उत्तर ।
ब्रह्मरूप वह भयो गिरे तनु यत्तर तत्तर ॥
कह गिरिधर कविराय रह्यो नहिं शिरपर करज ।
देव ऋषि अरुपितृऋणको नहिं यामेंहरज॥३२७॥
जो तुझको तोला झुके, तू झुक सेर पचीस ।
मरोर करै इक तस्सुभर, तू कीजै हाथ बईस ॥
कीजै हाथ बईस रीति व्यवहारकि ऐसी ।
जैसा जैसा देव जगतमें पूजा तैसी ॥
कह गिरिधर कविराय रोतेके सँग रोते जो ।
हँसते सँग हँसि मिलो पुरुष हँसके बोले जो ३२८॥
नारी होवे नर हुए, युवा वृद्ध जो कोय ।
जो जाको चाहै नहीं, ताको चहै न सोय ॥
ताको चहै न सोय रीति अज्ञ तज्ञकी येही ।
दुष्ट बुद्धि सँग दुष्ट साधुके परम सनेही ॥
कह गिरिधर कविराय खिलारी साथ खिलारी ।

प्रेमि साथ कर प्रेम पशु बालक नर नारी ॥३२९॥
जो जिनसे मुरझात है, सो तिनसे सकुजात ।
जिसको पिख जो विगस है, तिसे देख विगसात॥
तिसे देख विगसात रीति धुरसे चल आई ।
अज्ञ तज्ञकी रीति न इसमें संशय राई ॥
कह गिरिधर कविराय पुरुष उत्तम है सो ।
राग द्वेषते रहित जगतमें विचरै जो ॥ ३३० ॥
तुझको हम जैसा चहैं, तैसे हमको तुम ।
निज करतूतको समझके, भयो तुरतही गुम ॥
भयो तुरतही गुम न बोलनकी रही हाजत ।
ज्यों लीने तन्तु उचार सरँगिया बहुरि न बाजत ॥
कह गिरिधर कविराय यथा तुम जानत मुझको ।
तैसेही हम जानत हैं निश्चय कर तुमको ॥३३१॥
नेकी नेका साथ जो, खैर खैरियत वीर ।
बदी करै सँग बदोंके संग शरीयत धीर ॥
संग शरीयत धीर बुरे सँग करै भलाई ।

इन्सानोंकी रीति किसी बिरलेने पाई ॥
कह गिरिधर कविराय पुरुष जो परम विवेकी ।
जौन तौन परकार करै सबके सँग नेकी ॥३३२ ॥
चाहे तुझको सर्व जन, जबलग तू अनुसार ।
प्रतिकूल भये ऐसे उडे, आग लगे घनसार ॥
आग लगे घनसार रहे नहिं पाछे भस्मी ॥
सिंहनाद सुन यथा पलावै जम्बुक पश्मी ॥
कह गिरिधर कविराय आप तू जब निर्वाहै ।
राव रंक नर नारि बाल बृध क्यों ना चाहै ॥३३३॥
हाहा हीही करनसे, होत परस्पर प्रेम ।
करामात मुलाकातमें, अधिक शक्ति यह नेम ॥
अधिक शक्ति यह नेम वाकफीमें यह बल है ।
सिद्धी लगती लगे महिरमी प्रथमें फल है ॥
कह गिरिधर कविराय काट दुनियांका फाहा ।
तिसमें गोता मार न जिसमें हीही हाहा ॥३३४॥
हमको वह देखत नहीं, हम निरखैं तिस ओर ।

प्रीति हमारी अतिभई, लग्यो मचावन शोर ॥
लग्यो मचावन शोर बडी अक्किलका खाविंद ।
वह नहिं बोले मुखौ करत यह फिरै खुशामद ॥
कह गिरिधर कविराय खबर जा देवो वाको ।
जो है हमरा मीतकाल त्रय चाहे हमको ॥३३५॥
मुरियो मन जिस वस्तुकी, तरफो दोष निहार ।
सब इन्द्रिय तिस विषयसों, हट गये एकैबार ॥
हट गये एकै बार कोऊ तिस तरफ न जावे ।
चित चलियो जिस ओर करण गण पाछे धावे॥
कह गिरिधर कविराय ज्यों फूटो कांच न जुरियो।
तैसे दिल ना मिले तानिकासा जेहिते मुरियो३३६॥
जहुर देखकर नरोंके, करी चित्तको तर्क ।
रे मन भोंदू बावरे, तू क्यों होवै गर्क ॥
तू क्यों होवै गर्क कोउ नयननको इच्छू ।
कोइ स्वारथी जान कोऊ बकवादी बिच्छू ॥
कह गिरिधर कविराय शोक ना व्यापे बहुरि।

आप उपेक्षा करै चीनकर सबके जहुरि ॥३३७॥
जेती जेती महि रमी, तेतो तेतो पाप ।
जेता कर है संग्रह, तेता सहै सन्ताप ॥
तेता सहै सन्ताप यह तो निश्चय करि जानी ।
जगमें है परसिद्ध बात कछु नाहिं न छानी ॥
कह गिरिधर कविराय सुनाऊं तुझको केती ।
उतनी हत्या जान बाह्यमुख वृत्ती जेती ॥३३८॥
चीने प्रथम जो आपको, धूल देह पुनि अमर ।
राग द्वेष बकवाद पर, सो नर बांधे कमर ॥
सो नर बांधे कमर जो ऐसो कबहुँ न माने ।
सो क्यों मत्सर करै विवेकी परम सयाने ॥
कह गिरिधर कविराय पुरुष सो परम प्रवीने ।
तजकर देह अभिमान आपको अद्वै चीने३३९॥
अवस्था उत्तम सहज है, मध्य धारणा ध्यान ।
शास्त्रचिंतन कनिष्ठ है, अतिकनिष्ठ तेहि जान ॥
अति कनिष्ठ तेहि जान वार्ता लौकिक जेती ।

सो तुम अधम पिछान शुभाशुभ यावत तेती ॥
कह गिरिधर कविराय और सगरो तज फस्था ।
ग्रहण करो इक वही कही जो प्रथम अवस्था ३४० ॥
कथा न सुननी बांचनी, ना करना परमोद ।
पढै पढावै और जो, वा सँग नाहिं विरोध ॥
वा सँग नाहिं विरोध सुने अथवा कोउ बांचे ।
भावे धारे ध्यान भावे निशि वासर नाचे ॥
कह गिरिधर कवि रोग यथा औषध पुनि तथा ।
जिसको भ्रांतिअजार सुनैनिशिवासरकथा॥ ३४१॥
आधी साखी कर गहो, कोटि ग्रन्थको सार ।
ब्रह्म सत्य जग मिथ्या, जीव ब्रह्म निर्धार ॥
जीव ब्रह्म निर्धार भेद परिछेद शून्य अज ।
निर्विभाग निर्द्वैद्व न जामें सत्त्व तमो रज ॥
कह गिरिधर कविराय रहित उपहीत उपाधी ।
परम प्रेमका विषय कह्यो साखीकर आधी ३४२॥
द्रष्टा दृश्य न होत है, दृश्य न द्रष्टा होय ।

द्रष्टाने जब आपको, दृश्य रूप कर जोय ॥
दृश्य रूप कर जोय इसीते भयो कुचैनी ।
निजते न्यारा मान्यो शैवी शाकत जैनी ॥
कह गिरिधर कविराय सहे नानाविध कष्टा ।
भ्रांति कूपके माहिं पडचो जिस दिनमें द्रष्टा ३४३॥
शिक्षा छन्द रु व्याकरण,ज्योतिष कल्प निरुक्त ।
षट अँग हैं यह वेदके, यामें नाना युक्त ॥
यामें नाना युक्त विना सद्गुरु नहिं पावै ।
ब्रह्म श्रोत्रियनिष्ठ जो गुरू मिले तो आवै ॥
कह गिरिधर कविराय तजे जब मनसों विक्षा ।
तब होय यथारथ ज्ञान यही संतनकी शिक्षा ३४४॥
यही असीकर ज्ञानकी, करी अविद्या घात ।
लोक ईषणा वासना, भई दीनता पात ॥
भई दीनता पात सहित देह दृश्य असाता ।
जाति पांति सब गई जगत्को टूटचो नाता ॥
कह गिरिधर कविराय भ्रांति तिसके कब रही ।

ब्रह्म विद्याकी तेग हाथमें जिसने गही ॥३४५॥
लीला तेरी देव जू, दृश्य नाम अरु रूप।
इन्द्रजालवत् जगत् है, अद्वितीय तुव रूप॥
अद्वितीय तुव रूप शुद्ध पूरण अविनाशी।
अजर अमर आखण्ड निरामय स्वतः प्रकाशी॥
कह गिरिधर कविराय रिजकको रच्यो हरीला।
करी बहाने मौत देव! सब तेरी लीला॥ ३४६॥
खिलारी तेरे खेलका, किने न पायो अन्त।
परिछेद तीन ते शून्य तू, या कारणै अनन्त॥
या कारणै अनन्त सन्त ऋषि मुनी बतावत।
चतुर षट्क दश अष्ट पञ्चमो वेद गनावत॥
कह गिरिधर कविराय लोकहू भयो खिलारी।
कहूँ श्वपच कहुँविप्रकहूँ त्रयदेव खिलारी॥३४७॥
जाके अन्तःकरणमें, राग द्वेषकी आग।
तिनको सुख स्वप्ने नहीं, शांति न लहै अभाग॥
शांति न लहै अभाग और पुनि किसी प्रकारा।

विना ज्ञान नहिं मुक्ति वेदका बजै नगारा ॥
कह गिरिधर कविराय धूरि शिर डारो वाके ।
राग द्वेषकी अनलजलित है अंतर जाके॥३४८॥
मिटी अविद्यामूल जब, भो अनंदको ठाठ ।
जैसी करनी रिन्दकी, तैसो गीता–पाठ ॥
तैसो गीता–पाठ रहै नित उच्च स्वरसों ।
ब्रह्मसागरमें मग्न भयो बचिये त्रय ज्वरसों ॥
कह गिरिधर कविराय बासना तृष्णा हिटी ।
भो आनँदको ठाट अविद्या मूला मिटी॥३४९॥
असली वस्तू एक है, अध्यारोपै दोय ।
वाद किये फिर एक है, ऐसो समझै जोय ॥
ऐसो समझै जोइ सोइ नर कहिये दाना ।
निजस्वरूप व्यतिरेक न जिसको भासै आना ॥
कह गिरिधर कविराय त्यागकर मसले मसली ।
सोई निहारो चीज शीघ्र जोईहै असली ॥३५०॥
पागो फेंक्यो द्वैतको, भ्रमको तोरी मेड ।
मुठी निकासी भेदकी, कहां मुक्तिकी जैड ॥

कहां मुक्तिकी जैड अविद्या मुई लुखरिया।
बाह्यमुखी जो बुद्धि सो बिलमें धँसी चुखरिया॥
कह गिरिधर कविराय तज्ञके सँग जो लागो।
टूक टूक कर डार दियो तिनभ्रमको पागो॥३५१॥
भजन कौनको कहत हैं, सुनियो दीनदयाल।
वेद जासुको कहत हैं, सो तो पुरुष अकाल॥
सो तो पुरुष अकाल काल तुझमें है ऐसे।
रज्जुखण्डके माहिं अरोपित विषधर जैसे॥
कह गिरिधर कविराय अन्यको तजिकै अजन।
चीन्ह आपको ब्रह्म न यासमहै कोउ भजन॥३५२॥
यतीमध्य मैं यती हूँ, ना मैं यती अयती।
सती मध्य मैं सती हूँ, ना मैं सती असती॥
ना मैं सती असती दती मैं दती अदती।
मती मध्य मैं मती मती तो नाहीं अमती॥
कह गिरिधर कविराय क्षती मैं क्षती अक्षती।
वर्णाश्रमकी गम्म न जिसमें सो मैं यती॥३५३॥
नार मध्य मैं नार हूँ, ना मैं नार अनार।

यार मध्य मैं यार हूँ ना मैं यार अयार ॥
ना मैं यार अयार धार मैं धार अधार ।
पार मध्य मैं पार पार तो नहीं अपार ॥
कह गिरिधर कविराय हार मैं हार अहार ।
मुझमें कल्पित सबै नपुंसक नर पुनि नार ॥३५४॥
करण मध्य मैं करण हूँ, ना मैं करण अकरण ।
भरण मध्य मैं भरण हूँ, ना मैं भरण अभरण ॥
ना मैं भरण अभरण हरण मैं हरण अहरण ।
तरण मध्य मैं तरण तरण तो नाहिं अतरण ॥
कह गिरिधर कविराय मरणमें मरण अमरण ।
मेरी सत्ता विना थोथरे हैं सब करण ॥ ३५५ ॥
अकल मध्य मैं अकल हूँ, ना मैं अकल अनकल ।
सकल मध्य मैं सकल हूँ, ना मैं सकल असकल ॥
ना मैं सकल असकल जिस्म जिस्में अजिस्म ।
इस्म मध्य मैं इस्म इस्म तो नाहिं अनिस्म ॥
कह गिरिधर कविराय नकलमें नकल अनकल ।
मेरे सन्मुख भई गुम्म, होजावे अकल ॥३५६॥

वाक मध्य मैं वाक हूँ, ना मैं वाक अवाक ।
नाक मध्य मैं नाक हूँ ना मैं नाक अनाक ॥
ना मैं नाक अनाक चाक मैं चाक अचाक ।
पाक मध्य मैं पाक पाक तो नहीं अपाक ॥
कह गिरिधर कविराय ताक मैं ताक अताक ।
मेरे आगे सब खमोश होजावे वाक ॥ ३५७ ॥
कूप मध्य मैं कूप हूँ, ना मैं कूप अकूप ।
यूप मध्य मैं यूप हूँ, ना मैं यूप अयूप ॥
ना मैं यूप अयूप यूप मैं भूप अभूप ।
रूप मध्य मैं रूप रूप तो नाहिं अरूप ॥
कह गिरिधर कविराय धूपमें धूप अधूप ।
जामें परचो न निकसियो कोऊ सोमैं कूप ३५८॥
ताप मध्य मैं ताप हूँ, ना मैं ताप अताप ।
जाप मध्य मैं जाप हूँ, ना मैं जाप अजाप ॥
ना मैं जाप अजाप आपको आप प्रकाशक ।
सूक्षम थूल प्रपञ्च सर्वको इकरस भासक ॥
कह गिरिधर कविराय पाप मैं पाप अपाप ।

जामें जाप सिरात अष्टज्वर जो है ताप ॥३५७॥
लोचन नव पुनि षटभुजा, तीन शीश त्रयचरण ।
रौद्र वर्ण इक कर भसम, सोई शस्त्र मद हरण ॥
सोई शस्त्र मदहरण इहि ज्वरका रूप बतायो ।
वह ज्वर अष्ट प्रकार चिकित्सा शास्त्रन गायो ॥
कहगिरिधर कविराय गर्भ कर डारे मोचन ।
जिसतन करै प्रवेश एकघटिकानवलोचन॥३६०॥
मालिक अपना आप तू,तुव नहिं मालिक अन्य ।
समझेगा जिस वक्त यह, तब होवे धनि धन्य ॥
तब होवे धनि धन्य लोक या पुनि परलोकमें ।
संसार सिन्धुको तरे न डूबे कूप–शोकमें ॥
कह गिरिधर कविराय खलिकका जो है खालिक ।
सो परमेश्वर तूहि पिंड ब्रह्मांडको मालिक॥३६१॥
तेरो ईश्वर तूहि है, और न दूसर सीव ।
महत भूलकर आपनो, भयो तुच्छ तू जीव ॥
भयो तुच्छ तू जीव न कारज कोउ सँवारचो ।
अपनो हत्थी आप आपना काम बिगारचो ॥

कह गिरिधर कविराय आपको आपै हेरो ।
आधिव्याधि कौ ताप सकल मिट जावें तेरो३६२॥
एक वस्तुको दो कहै, दोमें एक निहार ।
यही भ्रांति करि पुरुष यह, उरझो मधि संसार ॥
उरझो मधि संसार न समझत है इक तनका ।
दुख समुद्रमें बहै लहै नहिं सुखको कनका ॥
कह गिरिधर कविराय बडो यहु है अविवेक ।
एक वस्तुको दोइ कहै पुनि दोको कह एक॥३६३॥
क्षणमें होवे रुष्ट जो, दूसर क्षणमें तुष्ट ।
रुष्ट तुष्ट क्षण क्षण विषे, ऐसा नर जो दुष्ट ॥
ऐसा नर जो दुष्ट मलिन विषयनको किंकर ।
रहितव्यवस्था चित्तखुशी तिसकी अतिभयंकर ॥
कह गिरिधर कविराय लक्षण हुए हों जिनमें ।
वाका सँग मत करो कोप होवे जो क्षणमें ॥ ३६४ ॥
हरी पापको हरत हैं, सुमरे दुष्ट जो चित्त ।
विन इच्छा स्पर्श ज्यों, दहै सुवह्नी नित्त ॥
दहै सुवह्नी नित्त तथा जो भोजन खावे ।

क्षुधा हरनकी चाह नहीं पुनि तऊ अघावे ॥
कह गिरिधर कविराय बात अब सुन ले खरी ।
जिसके नाम लिये अघ भाजत सो तू हरी॥३६५॥
जूतो लेकर गंगमें, धोवे बार हजार ।
शुद्ध न होवे किसी विध, करे अनेक अचार ॥
करे अनेक अचार खूह खण बने अचारी ।
केदार खण्डमें बसे अहिंसक नहिं मार्जारी ॥
कह गिरिधर कविराय धाम फिरे पूजनकूतो ।
त्यों देह न होवे विमल चर्मको जैसे जूतो॥३६६॥
पाक पतीत न होत है, पतित न होवे पाक ।
बेर आंब नहिं बनत है, आंब बने नहिं आक ॥
आंब बने नहिं आक यथारथ सुन ले भय्या ।
धेनु न कहिये शुनी शुनी पुनि नाहीं गय्या ॥
कह गिरिधर कविराय धातुकी देह यह थाक ।
सर्व प्रकार अशुद्ध आत्मा है इक पाक ॥ ३६७ ॥
छोटे परमेश्वर विषे, सिफतां रहैं अनेक ।
निजानन्दके बोध बिनु, भासित नाहिं न एक ॥

भासित नाहिं न एक बडो है यह तो घाटा।
सूधो मारग छोडि पकडचो कुत्सित बाटा॥
कह गिरिधर कविराय यह लक्षण पइये खोटे।
ईश्वर जीव अभिन्न ज्ञान बिन बन रहे छोटे॥३६८॥
नारी नवको फील रच, नव नारी सुखपाल।
मोरमुकुटको पहिरके, भये अरूढ गोपाल॥
भये अरूढ गोपाल ब्रह्म जो करण–अगोचर।
सो लीला–तनु धारि भये चख–इंद्रियगोचर॥
कह गिरिधर कविराय ओढकर कमरी कारी।
वंशी शब्द सुना मोही जिन ब्रजकी नारी ३६९॥
हाथी मुखसों नीकस्यो, पूंछ रही कुछ शेष।
ता निकासबेके लिये, कर है कौन कलेश॥
कर है कौन कलेश कथन इक शब्द न लागे।
जान लई जब रज्जु सर्प नहिं कोउ फिर भागे॥
कह गिरिधर कविराय न तेरो कोई साथी।
नाम रूप परपंच सकल तू नारी हाथी॥३७०॥
रत्ता तांबा घर विषे, फिरत गढावत देग।

सूई लई छदामकी, मजदूरी जा तेग ॥
मजदूरी जा तेग जासुकी ऐसी मती ।
अल्प क्रियाको करके चाहैं अर्ध गती ॥
कह गिरिधर कविराय नीर भावै मनछत्ती ।
ऐसों हंडो मांगे देकर तांबा रत्ती ॥ ३७१ ॥
यद्यपि नर कोउ अतिविरल,बोल न जाने हरफ ।
दुर्जनका बल ना चले, परमेश्वर जिस तरफ ॥
परमेश्वर जिस तरफ रोम तिस एक न छीजै ।
भोजन मध्य मिलाय हलाहल जो कर दीजै ॥
कह गिरिधर कविराय कमी नहिं तिसको तद्यपि ।
भाग्य शूरको बात न करनी आवे यद्यपि ॥३७२॥
काचो मन्त्री छोड़के, मन्त्री कीजै ऐन ।
जो गुड दियेही मरे, क्यों जहर दीजिये गैन ॥
क्यों जहर दीजिये गैन होय जिससे बदनामी ।
तहां न पहुँचे कामुक जो पद लहै अकामी ॥
कह गिरिधर कविराय न जीतो सुनो न बाँचो ।
आतम विद्या विना और शास्तर सब काँचो ३७३॥

भौंडी किस्मतके भये, जोरू मारै जूत ।
मजूर होयकर जो रहे, करै निरादार पूत ॥
करै निरादार पूत जो घरते बाहर जावे ।
सब जन हांसी करै तो आदर कहूँ न पावे ॥
कह गिरिधर कविराय मोलका लौंडा लौंडी ।
वह भी करै मखोल मन्द प्रारब्ध जो भौंडी॥३७४॥
ताले वाले जिनाके, दुश्मन तिनके दफे ।
घाटे वाली वस्तु लै, तौ भी पावै नफे ॥
तौ भी पावै नफे सुनो अब बे नसीबकी ।
करे बात जो भली तो हानी होत जीवकी ॥
कह गिरिधर कवि मादर पिदर बिरादर साले ।
सबही देत जवाब यह बेवकूफके ताले ॥३७५॥
भाग्यहूनको जो मिलै, चिन्तामणि कहुँ ठौर ।
देखतहू देखत नहीं, जान लेत कछु और ॥
जान लेत कछु और कांच वा पाथर कंकर ।
तथा किसीको सर्वदा प्राप्त चिद्धन शंकर ॥
कह गिरिधर कविराय दृश्यमें करै अनुराग ।

मस्यक अपनो आप न चीन्हे बडो अभाग॥३७६॥
ज्ञानेवाली वस्तु जो, रहै नहीं क्षण एक ।
रहनेवाली जाय नहिं, उठे उपाधि अनेक ॥
उठे उपाधि अनेक उष्ण तिस पवन न लागत ।
विधि चलाय ना सके आदमीकी क्या ताकत ॥
कह गिरिधर कविराय कालने तेई खाने ।
जिनकी आई अजल अर्थ है तेई जाने ॥ ३७७ ॥
पापी छूटे पापते, पुनि पापीसे पाप ।
मुक्त होय युग परस्पर, जपो 'शिवोऽहं' जाप ॥
जपो 'शिवोऽहं' जाप अर्थके सहित जोई नर ।
सञ्चित कर्म अनेक जन्मके जायें मर ॥
कह गिरिधर कविराय वृत्ति यह जिसने थापी ।
मैं हूँ ब्रह्म अद्वितीय फेर वह रहे न पापी ॥३७८ ॥
आँधी आई ज्ञानकी, उड गयो सभी वकूफ ।
नाटक काव्य पुराणको, पढनो भयो मकूफ ॥
पढनो भयो मकूफ जगत बहार न भावे ।
दांत पडे जब टूट कौन मुरचंग बजावे ॥

कह गिरिधर कविराय यार पायो जब गाँधी ।
दबगर साधा प्रीति यही अक्कलकी आंधी॥३७९॥
चितबिचरनकीभूमियां,शब्दादि–विषै परिछिन्न ।
तिन तिनमें जो राग है, यह अबोधका चिह्न ॥
यह अबोधका चिह्न बोधका लिंग वैराग ।
सो तौ उपजै तिसको जो नर है बडभाग ॥
कह गिरिधर कविराय जो दारा सुत गृह वित्त ।
तिनको दिखे असत्य फेर कहां धाये चित्त३८०॥
मग्गी पीछे हटो रे, कहां भयो जा मग्न ।
आंख मूँदकर बावरे, धँस्यो जाय बिच अग्न ॥
धँस्यो जाय बिच अग्न जन्म जन्मान्तर रोवै ।
कण्टक तरे बिछाय कहो सुख कैसे सोवै ॥
कह गिरिधर कविराय पेलकर माया ठगनी ।
आप आपने माहिं पैठ सुख पावो मगनी ३८१ ॥
तनक व्यथाके उदयसे, शिथिल होत है गात ।
लौकिक वैदिक चातुरी, एकै बार पलात ॥
एकै बार पलात खबर कछु रहै न गेहू ।

ऐसे तनुसों पामर विना को करै सनेहू ॥
कह गिरिधर कविराय कलत्र मित्र के जनक ।
कोउ निवार नहिं सकै देहकादुखइकतनक ३८२॥
दास आपनो आप है, तपसी पुरुष महान ।
तन्त्र होयकर आपही, विचरे बीच जहान ॥
विचरे बीच जहान अन्यकी तजकर आशा ।
बन पट्टन गिरि गुहा जहां तहँ करै निवासा ॥
कह गिरिधर कविराय सर्वमें भयो निरास ।
आप आपना प्रभू तपोधन आपै दास ॥ ३८३॥
यही कदीमी हाल है, मनका सुन रे मीत ।
क्षणमें बर्तें नीतिमें, क्षणमें हो विपरीत ॥
क्षणमें हो विपरीत क्षणकमें चहे दुशाला ।
क्षणमें ओढचो कंबल चाहे क्षण मृगछाला ॥
कह गिरिधर कविराय क्षणकमें बन है गेही ।
क्षण विरक्त विपरीत ख्याल मनकेहैं येही॥३८४॥
देखे मनके जहुर जब, यही पुरी दिल बीच ।
देहादिक संघातमें, और न मन सम नीच ॥

और न मन सम नीच पुरुषको पुनि पुनि फुर है ।
शब्दादिक जो विषय तिन्होंको हरदम धुरहै ॥
कह गिरिधर कविराय और करनी किस लेखे ।
जबलग मनको मिथ्या भौतिकदृश्य न देखे ३८५॥

रे मन मन्दी बात तज, गन्दा तज हंकार ।
ज्ञान धनुष उरमें गहो, करहु ब्रह्म टंकार ॥
करहु ब्रह्म टंकार जरा तू पग धर आगे ।
भ्रम जो पञ्च प्रकार हृदयते तत्क्षण भागे ॥
कह गिरिधर कविराय मूल संसारके खन रे ।
नाश होय संसार द्वैत फिररहै न मन रे ॥३८६॥

रे मत भोंदू बावरे, छोडे नहीं कुचाल ।
श्रुति स्मृति सब कह थके, तेरा वही हवाल ॥
तेरा वही हवाल बेसुरा बेताला गावे ।
नाम रूप परपंच और निशि वासर धावे ॥
कह गिरिधर कविराय और तू मत कुछ बन रे
निज स्वापके माहिं सदा स्थित रहु मन रे ३८७॥

रे मन शब्द स्पर्श जो, रूप पुनः रस गन्ध ।

सर्व दुःखका बीज यह, तू नहिं समझत अंध ॥
तू नहिं समझत अंध सदा इनहींको चाहै ।
अपनी हत्थी आप आपने तनको दाहै ॥
कह गिरिधर कविराय जो प्रत्यक आनँद घन रे ।
तिसहि माहिं रहलीन सुखी तब होवै मन रे ३८८॥
रे मन सूधो होय चल, छांड कपटकी रीति ।
छल बल कला बिसारि सब, करो एकसों प्रीति ॥
करो एकसों प्रीति जो अन्तर व्यापक तेरे ।
देहेन्द्रिय पुनि प्राण सहित जो सबको प्रेरे ॥
कह गिरिधर कविराय आन गनती मति गन रे ।
तज परवृत्ति निवृत्ति रहो तुम सूधो मन रे॥३८९
रे मन भौतिक वर्गमें, तू महन्त परधान ।
तेरे पाछे हैं सबै, देहेन्द्रिय बुधि प्राण ॥
देहेन्द्रिय बुधि प्राण इन्होंमें तू है नायिक ।
क्रिया तेरे आधीन मानसी वाचिक कायिक ॥
कह गिरिधर कविराय होवे तबहीं धन धन रे ।
जब निर्विकार होरहे सर्वथा इकरस मन रे ॥३९०

रे मन तासों प्रीति करि, जो सबकोऽधिष्ठान ।
आन ठौर सुख है नहीं, यह निश्चय कर जान ॥
यह निश्चय कर जान श्रुती गुरु सन्त बखाने ।
माधव व्यास वसिष्ठ कहैं तुम एक न माने ॥
कह गिरिधर कविराय शिवोहं शिवोहं भन रे ।
जो सबकोऽधिष्ठान प्रीति तासों कर मन रे ॥ ३९१

माला मनसों कहत है, सुनो देव जग भूप ।
मुझ फेरे क्या होत है, तू न लखै निज रूप ॥
तू न लखै निज रूप तो करनी है सब थोथी ।
केवल है बकवाद खोलकर पढै जो पोथी ॥
कह गिरिधर कविराय होत मुख तिनका काला ।
जो प्रत्यक ब्रह्माभिन्न ज्ञान बिन फेरत माला ३९२॥

मनुआ मालासों कहत, सुन रे भौंडी वाम ।
जो मैं लखौं स्वरूपको, तुझसों रहा न काम ॥
तुझसों रहा न काम न तुझको कबहूँ फेरूं ।
मलियां मनियां करके मध्य चौरस्ते गेरूं ॥
कह गिरिधर कविराय जब अपना आप पछनुआं ।

तुझसों रहा न काम पुकारे ऐसे मनुआं ॥ ३९३
मोटा सोंटा चाहिये, हाथ डेढ परमान ।
घोटे भंग भुजंगको, तोडत दन्ता श्वान ॥
तोडत दन्ता श्वान कहूँ दुर्जन मिल जावे ।
दुश्मन दावेगीर ताहिके मस्तक लावे ॥
कह गिरिधर कविराय राखिये सुन्दर सोंटा ।
अपने बलसे हेठ नहीं छोटा नहिं मोटा ॥ ३९४ ॥
देखी तेरी गति सकल, रे मन भोंदू भूत ।
पंडित मुंडित पच रहे, समझत नाहिं कुपूत ॥
समझत नाहिं कुपूत बांध रह्यो भ्रमको मूठी ।
पुनि भोगेको भोगत पत्तल चाहत जूठी ॥
कह गिरिधर कविराय नपुंसक है तू भेखी ।
मिलो सजाती साथ छोडकर देखा देखी ३९५॥
रुजू होत जाकी तरफ, जासु पुरुषका चित्त ।
तिसहीको सब देत है, सुत दारा तन वित्त ॥
सुतदारा तन वित्त तिसी क्षण सब कर अर्पण ।

जब मन तिससे हठै फेरकर सकै न तर्पण ॥
कह गिरिधर कविराय पढे निजाम न साजे उजू ।
एक बेर खुदविषे भया तिसका मन रुजू ॥३९६॥
रे मन ऐसो काम कर, जाते पावे शान्ति ।
रागद्वेष मिट जाय सब, आशा तृष्णा भ्रान्ति ॥
आशा तृष्णा भ्रांति नीचनी है यह पापिन ।
जाके अन्तर बसे तिसीको डँस है सांपिन ॥
कह गिरिधर कविराय ज्ञान कर तू उत्पन रे ।
निबिड अँधेरो नाशै मूल अविद्या मन रे॥३९७॥
रसिया रस झूँठो पर्‍यो, सांचे रसको छोड ।
इन विषयनको भोगते, बीते कल्प करोड ॥
बीते कल्प करोड सांच कहु राम दुहाई ।
जन्म असंख्य बिताय शांति ना तुझको आई ॥
कह गिरिधर कविराय खोदतो फिरे अब धसिया ।
राजसिंहासन छोड़ि गुलामी करै कुरसिया३९८॥
भागे मुल्लां कहँ तलक, है मसीद तक दौड ।

आगे जागा है नहीं, जाते होवै चौड ॥
जाते होवै चौड तथा परवर्ती जो खल ।
जाति पांति विन नाहिंन इनके पुनि को बल ॥
कह गिरिधर कविराय विरक्त दोनोंको त्यागै ।
निर्भय विचरै सन्त किसीसे डरै न भागै ३९९॥
आमय बडो प्रमाद है, सर्व दुःखका बीज ।
तिसके आगे भूत जिन, और रोग क्या चीज॥
और रोग क्या चीज अल्प है जिसकी आयू ।
देह पातके अन्त विषमता रहे न वायू ॥
कह गिरिधर कविराय दैव जब आवे वामै ।
प्रथमै देह अध्यास होय पुनि पाछे आमै ४००॥
दुर्जन देखै सन्तको, धारै मनमें रोष ।
और कोई बल ना चले, अनहुत कल्पै दोष ॥
अनहुत कल्पै दोष वाक्य बोले सब डिसमिस ।
ज्यों जंबुक चिचियायखाय मतटीठू किसमिस ॥
कह गिरिधर कविराय बहुत समझावै गुरुजन ।

तऊ स्वभाव न तजै पातकी ऐसो दुर्जन ॥४०१॥
शानी चाहत शानको, मानी चाहत मान ।
गुजरानी गुजरानमें, होय रहे गलतान ॥
होय रहे गलतान तीन यह भारी सरिता ।
आतम चेते विना दूसरा नहिं कोइ तरता ॥
कह गिरिधर कविराय जिते नर हैं अज्ञानी ।
कोउचाहतगुजरान मान कोउ होरहो शानी ४०२॥
पोसत पीवे वारुणी, खात अफीम मजून ।
गटके गञ्जा चरस जो, सो वैराग्यते शून ॥
सो वैराग्यते शून अन्यथा हैं अभिसन्धी ।
अहोपोहसे रहित बुद्धि तिनकी भइ अन्धी ॥
कह गिरिधर कविराय न दूजे तिनको दोसत ।
भंग तमाखूखात वारुणी पियत जो पोसत॥४०३॥
श्वान स्यार अहि सिंहका, जिसमें रहै खबास ।
मिलेन जिसदिन बखत शिर, पांचों उडै हवास ॥
पांचों उडै हवास बढै नख शिखु जरदाई ।

सब बाई पच जाय कजा की रहै न राई ॥
कह गिरिधर कविराय दरिद्री होवे ज्वान ।
यहि अफीममे सिफता वृत्ती करै ज्यों श्वान॥४०४॥
जेते गुणविजया विषे, कहि न सकै कोउ लोग ।
एक दोष कछु कहत हौं, सो है सुनबे योग ॥
सो है सुनबे योग भंग जब पीवे भंगी ।
चढे जो ताको अमल बुद्धि होवे बहुरंगी ॥
कह गिरिधर कविराय सुदाई होवत केते ।
को कवि करै बखान जहुर विजयामें जेते ४०५॥
हुक्कासे हुरमत गई, नियम धर्म गयो छूट ।
दाम खर्च लियो तमाकू, गई हियेकी फूट ॥
गई हियेकी फूट आगको घर घर डोले ।
जिस घर आगको जाय सोई कुररातो बोले ॥
कह गिरिधर कविराय लगै जब यमको रुक्का ।
प्राण जायँगे छूट सहाय होवै नहिं हुक्का ॥४०६॥
लूचा चिसनू आखिये, जिसके मनमें लोच ।

लोच नाम है चाहका, चाह बनत नर पोच ॥
चाह बनत नर पोच पोचका अर्थ है अधम ।
ख्वाहिश रहित जो पुरुष देव तिस वन्दे कदम ॥
कह गिरिधर कविराय ज्ञानी ऊंचा सूचा ।
अज्ञानी देह अभिमानी कामी पामर लूचा ४०७॥
राम बढाये सो बढै, करके बढचो न कोय ।
बल छल करके जो बढै, सो प्रभु दीन्हें खोय ॥
सो प्रभु दीन्हें खोय खर दूषण ताडका वाली ।
सह कुटुम्ब कियो नाश जो रावण बडो कुचाली ॥
कह गिरिधर कविराय त्याग कर लौकिककाम ।
हरदम आठों याम जपोहं सीता राम ॥ ४०८ ॥
राम एकलो करत है, सर्व जनोंके काम ।
तिसको तजकर मूढ जन, जपैं औरको नाम ॥
जपैं औरको नाम तिनोंकी है कमबख्ती ।
वस्तू छोड कुवस्तु गहैं यह तो बदबख्ती ॥
कह गिरिधर कविराय न तिनको होत अराम ।

प्रत्यक ब्रह्म पृथक् कर जान्यो जिसने राम॥४०९॥
वैरी तेरो और नहिं, वैरी एक बदफैल ।
तू कुबुद्धिको छोडके, दशो दिशा कर सैल ॥
दशो दिशा कर सैल तुझे फिर कोय न रोके ।
ऐसो को संसार माहिं जो तुझको टोके ॥
कह गिरिधर कविराय आप जब बनै न गैरी ।
सर्व जगत् हो मित्र कोउ फिरि रहै न वैरी ॥४१०॥
मरजी चेतनकी जबै, झख मारनकी होय ।
मृगतृष्णाके नीरमें, बहि चाल्यो विन तोय ॥
बहि चाल्यो विन तोय न कहूँ किनारो पावे ।
कभी ऊर्ध्व कभी अधः पुनः पुन गोते खावे ॥
कह गिरिधर कविराय दीजिये किसढिगअरजी ।
परमेश्वरकी भई आप जब ऐसी मरजी ॥४११॥
गोते खायनको लग्यो, परमेश्वर जब आप ।
कही न माने वेदको, करै अनेक प्रलाप ॥
करै अनेक प्रलाप तात यह हमरी माता ।

यह हमरी है नारि ये हमरे हैं लघु भ्राता ॥
कह गिरिधर कविराय पुत्र ये हमरे पोते।
चिन्तासागरबीच परयोनित खावै गोते ॥ ४१२॥
धक्के खावनकी भई, चिद्धनको जब चाह।
जान बूझके आपही, लाग्यो करन गुनाह ॥
लाग्यो करन गुनाह न देखै कछु मदमत्ता।
आदर कोउ ना करै लोक सब कहै कुपत्ता ॥
कह गिरिधर कविराय विषय शब्दादिक तक्के।
या प्रकार परमेश्वर खावन लाग्यो धक्के ॥४१३॥
मौज होय चिददेवकी, शब्दादिक किये जाय।
विन इच्छा परयत्न विन, पावन लग्यो सजाय ॥
पावन लग्यो सजाय रुवाय विना यह रोवै।
ज्यों कोउ तरे बिछाय गोखरू ऊपर सोवै ॥
कह गिरिधर कविराय आसुरी राखी फौज।
दैवी संपति दूर करी चिदघनकी मौज ॥ ४१४ ॥
रोगी बेतन हो रह्यो, ग्रस्यो बहम आजार।

कभी स्वर्ग पुनि नरकको, लाग्यो खान पजार ॥
लाग्यो खान पजार रैन दिन राखै किस्सह ।
हम अमुके तू अमुक ईसमें मेरो हिस्सह ॥
कह गिरिधर कविराय बुद्धि भइ नखशिख सोगी ।
विना पित्त कफ वाय भयो परमेश्वर रोगी ॥४१५॥
हत्या आतमको लगी, नाम रूप अभिमान ।
तब हत्या यहँ ऊतरै, होय यथारथ ज्ञान ॥
होय यथारथ ज्ञान रहै नहिं ऐंचातानी ।
देख औरकी क्रिया न उपजे रंच गलानी ॥
कह गिरिधर कविराय भूलकर अपनी सत्या ।
हंता ममता त्वन्त लगी परमेश्वर हत्या ॥ ४१६ ॥
खराब होनको उठ्यो जब, चिद्घनकाहितरंग ।
चरस नमाखू पोसता, पीवन लाग्यो भंग ॥
पीवन लाग्यो भंग अशुधको शुद्ध कर थाप्यो ।
अविद्याको तब नाम खोजकर विद्या राख्यो ॥
कह गिरिधर कविराय मांस खा अँचै शराब ।

इन्हीं लक्षणों आप भयो परमेश्वर खराब॥४१७॥
तुफान जु देखनकी जगी, चेतनको अभिलाष ।
परमारथकी तरफते, मूँद लई निज आंख ॥
मूँद लई निज आंख तभी होयो आवरण ।
बहुरो भयो विक्षेप लग्यो फिर जन्म अरु मरण॥
कह गिरिधर कविराय चढ्यो अविवेक जुमान ।
स्वस्वरूप नहिं देखै बकने लग्यो तुफान॥ ४१८॥
पाप परमेश्वरको लग्यो, कल्पित देह अध्यास ।
अहं ब्राह्मण अहं क्षत्रिय, बकै न करै कयास ॥
बकै न करै कयास ज्ञान है और प्रकारा ।
कर है और प्रकार रोग यह अतिही भारा ॥
कह गिरिधर कविराय दिखे जब अपनो आप ।
मूल अविद्या सहित नष्ट हो पुण्य रु पाप ॥४१९॥
झगरा तैंने दाइया, तूही इसे निबेर ।
दूसरसों निबरे नहीं, यही अटपटो फेर ।
यही अटपटो फेर आप सुरझाये सुरझे ।

और लगावै हाथ तो उलटो दुगुनो उलझे ॥
कह गिरिधर कविराय भ्रांतिका पटको पगरा ।
अहं ब्रह्म जब लहै तभी यह चूकै झगरा ॥४२०॥

हिन्दू अस्ती भाति प्रिय,तुरुक हस्ति इल्म सरूर ।
बहु बरहक ब्रह्मरूप बहु, स्वप्रकाश खुदनूर ॥
स्वप्रकाश खुद नूर कहत है जाके ताई ।
लाइ जबान अवाक्य अरूप बेगुना अलाई ॥
कह गिरिधर कविराय सोई तू आनँद सिन्धू ।
जाका सुमरनकरत सर्वदा तुरक अरु हिन्दू ४२१ ॥

तबही मिहर खुदायकी, जब करै फकिर दबाय ।
कदम पवे दरवेशका, होवै रद्द बलाय ॥
होवै रद्द बलाय न होवत कोऊ हरकत ।
मदत जिसकी फकर तिसी घरमाहीं बरकत ॥
कह गिरिधर कवि करै जमालबे कैदोंका जबही।
होवै खुशी कमाल होत दिलगीरी तबही॥ ४२२ ॥

अल्ला रागीते नजिक, जाका सभी जहूर ।

बातन जाहिर यक अलिफ, हस्ती इल्म सरूर ॥
हस्ती इल्म सरूर नूर हर बखत हैं हाजर ।
परवर दिगार खुदावन्द बरहक यह कादर ॥
कह गिरिधर कविराय मार तिनकी शिर खल्ला ।
जो खुद बखुद बिनदिगर औरकोमानतअल्ला ४२३
आवै तो अटकाव ना, जावै तो नहिं रोक ।
इस लौकिक व्यवहारमें, हर्ष शोक नहिं टोंक ॥
हर्ष शोक नहिं टोंक नहीं ख्वाहिश इक माशा ।
फकिरी करनी लगी जबै फिर किसकी आशा ॥
कह गिरिधर कविराय कोइ रोवै कोइ गावै ।
नहीं किसीसे काम भावै जावे मत आवै ॥ ४२४ ॥
हिन्दीमाहिं फकीरको, अक्षर लागैं तीन ।
चार हरफ पुनि फारसी, जानत हैं परवीन ॥
जानत हैं परवीन जो हरफोंका है अर्थ ।
विना अर्थके जाने अहमक कहै अनर्थ ॥
कह गिरिधर कविराय अविद्या जिसने निन्दी ।

शहर मजहब हद हिरसकी, पगसों मेट लकीर ॥
पगसों मेट लकीर किसीसों कर नहिं दावा ।
सब तुझको करैं सलाम जानकर आदम बावा ॥
कह गिरिधर कविराय गैर कमकर है कांई ।
छोडै दिगर दलील तुझी किबला है सांई॥४३१॥
सांई लोक पुकार दे, हों मन रे बनिवा ।
ला शहर बे मजहबकी, पहिरो कुलह कबा ॥
पहिरो कुलह कबा कुकरका परदा फाडो ।
यावत दिगर दलील सकलका मूल उपाडो ॥
कह गिरिधर कविराय जो साहब सभनी थांई ।
मैं हों सोइ खुदाय पढो कलिमां यहु सांई ४३२॥
सांई लोक पुकार दे, रे मन होय खमोश ॥
खुदकी भीतर गुम्म होय, खुदकी रहै न होश ।
खुदकी रहै न होश तभी तुम होवो कामिल ॥
अथवा न्यारा रहो वा वसो सबके शामिल ॥
कह गिरिधर कविराय फटकडी लगे न राई ।

बिन मँजीड रँगरेज विना दिल रंगो सांई ४३३॥
सांई लोक पुकार दे, रे मन होय मलंग।
अमल फकीरीका चढे, क्या तिस आगे भंग॥
क्या तिस आगे भंग वारुणी चरस धतूरा।
नशे करै सब रद्द फकर जब होवै पूरा॥
कह गिरिधर कविराय किसीको तू न बुलाई।
तुझे न टोके कोय विचर निर्भय हो सांई ४३४॥
सांई लोक पुकार दे, रे मन हो बेकैद।
तीन जिस्मते भिन्न करि, खुदको देख नपैद॥
खुदको देख नपैद किसीको करो न सिजदा।
तुझको काफर कहै जबी तू क्यों है खिजदा॥
कह गिरिधर कविराय जुगति तेरी सब झांई।
नहिं तुझतें कुछ जुदा समझले ऐसे सांई॥४३५॥
सांई लोक पुकार दे, रे मन हो दरवेश।
काल हालको डालके, खुदमें कर परवेश॥
खुदमें कर परवेश शरहदा फडो न पल्ला।

सब दुनियाकी तरफों हटके बन रहो झल्ला ॥
कह गिरिधर कविराय जान ले अपने तांई ।
जिसे जानकर और जानना रहै न साँई ॥४३६॥
वासा जन समुदायमें, साधूको जो होत ।
यामें कारण कौन है ?, पूर्व पाप उद्योत ॥
पूर्व पाप उद्योत विना ढिग लगै न मण्डी ।
जागे खोटे भाग्य होय तब ऐसी भण्डी ॥
कह गिरिधर कविराय नाश जब होय दुराशा ।
फेर तो मनको भावे प्राकृत जनोंमें वासा ४३७॥
सोनो जैसो भूमिपर, तैसो ऊपर खाट ।
जैसो रेशम ओढनो, तैसो ही पुनि ठाट ॥
तैसो ही पुनि ठाट यथा घृत दुग्ध मलाई ।
तथा सु कोदों चूर्ण निमक बिन दाल कलाई ॥
कह गिरिधर कविराय काटनो ना कछु बोनो ।
जागेसे नहिं बाँधो घाटो नहिं कछु सोनो ४३८॥
तंगी तनक न सह सके, करै न औरन तंग ।

द्वितियरंग तहँ ना चढ़ै, जहाँ असल इक रंग ॥
जहाँ असल इक रंग रंग सोई है साँचा।
और जो कृत्रिम रंग सकल तुम जानो काँचा॥
कह गिरिधर कविराय फकिर जो सदा असंगी।
क्यों उपाधिमें पडै कौन विध देखे तंगी ४३९॥
अशन वसन भू कनक पुनि, बाँदा चोपगुलाम।
हडवाई हथियार बहु, यह नव निधिको नाम॥
यह नव निधिको नाम चहै जिनको परवर्ती।
भोजन छादन विना और सब तजै निवर्ती॥
कह गिरिधर कविराय छोडकर सगरे व्यसन।
आतम चिन्तन करै संतजन पाकर अशन ४४०॥
कता सो आयो आपनो, आगई जिसे पसन्द।
कोई मग्न बिच मजबके, कोइ लामजबमें रिन्द॥
कोइ लामजबमें रिन्द किसीको भावे कम्बर।
इष्ट किसीको चैल किसीको शाल दिगम्बर॥
कह गिरिधर कविराय अज्ञान जिसने गहि हता।

सो आप सर्वसमर्थकिसीको धरे न कता ४४१॥
शहर फकरको चाहिये, तथा भेषको उलिर ।
नहिर बागको चाहिये, तथा कवीको बहिर ॥
तथा कवीको बहिर मधुरता मधुर-खोरको ।
महीपालको नीति लष्टिका चश्म—फोरको ॥
कह गिरिधर कविराय सन्त जन आठों पहर ।
आतम चिन्तन करै रहै वनमें वा शहर॥४४२॥
मूर्ख लोक ना लख सकैं, संतनके जो फरेब ।
साधु कहावैं औलिये, जेकर चलैं अरेब ॥
जेकर चलैं अरेब तो शोभा होवत दूनी ।
बाजे बे परवाह सन्त जो महा जनूनी ॥
कह गिरिधर कविराय विवेकी कोऊ पूरुष ।
सत् मायाकोचीन्हे नाहिंन जानत मूरख ४४३॥
पशु जो पञ्च प्रकारके, तिनका कर तू त्याग ।
षष्टम सद्गुरु मुक्त जो, तिनके चरणों लाग ॥
तिनके चरणों लाग भागकर इनसों दडबड ॥

श्रवण करो महावाक्य छोड परवृत्ती अडबड ॥
कह गिरिधर कविराय विभाग न जामें तसु ।
तामें द्वैत अरोपे विना विचारे पशु ॥ ४४४ ॥
दरजा जो है फरकका, सो तुम सुन लो यार ।
चार हरफका मायना, दृढकर मनमें धार ॥
दृढकर मनमें धार तभी तुम होहु फकीर ।
गम जो दोनों आलमका सो न करै तगीर ॥
कह गिरिधर कविराय रहै ना शिरपर करजा ।
बेकैदोंका हक्क परस्तोंका जब पावे दरजा॥४४५॥
शरिस्ता सुनो फकीरका, तृष्णा करती भंग ।
भिक्षा खानी मांगकै, त्याग सर्वका संग ॥
त्याग सर्वका संग सो एका-एकी रमै ।
मन चञ्चलको मार करण श्रोत्रादिक दमै ॥
कह गिरिधर कविराय मिले कोदों वा पिस्ता ।
हर्ष विषाद न उठै यही फकरनका शरिश्ता४४६॥
खफै रहै तो रहन दे, राजी रहे तो रहो ।

निकस आवे तो निकसन दे,बहो जाय तो बहो ॥
बहोजाय तो बहो मरो वा बहु दिन जीवो ।
सुथरे शाह कि उक्ती घोल बताशे पीवो ॥
कह गिरिधर कविराय भ्रांतिको कर दे दफै ।
और होवे तो होवो आप मत हूजे खफै ॥४४७॥
तन्त्र आपनो भयो जब, छोड परतन्त्र पाप ।
ब्रह्म चीन्ह जो आपको, जपै कौनको जाप ॥
जपै कौनको जाप करै फिर किसकी सेवा ।
भिन्न आपसे लखै नहीं कोइ देवी देवा ॥
कह गिरिधर कविराय जपै निशि वासर मन्त्र ।
अहं सच्चिदानन्द अखण्ड अद्वितीयस्वतंत्र४४८॥
मौला लोक पुकार दे, रे मन होला चट्ट ।
जो आवै सो खाय ले, संग्रहकी जड पट्ट ॥
संग्रहकी जड पट्ट भूलकर नाम न लेवो ।
दंभ कामना विना जो दीया जाय सो देवो ॥
कह गिरिधर कविराय फेर ना होवै हौला ।

जान लेय तहकीक आपको जब तू मौला ॥४४९॥
मौला लोक पुकार दे, रे मन होला शक्क।
जहँ बोले तहँ बोल यह, मन बरहक बरहक्क॥
मन बरहक बरहक्क कलाम यह पढो हमेशा।
औरनका सँग त्याग करो सोहबत दरवेशा॥
कह गिरिधर कविराय मार तिनके शिर पौला।
खुदसे न्यारा माना जिसने दूजा मौला॥४५०॥
अल्ला लोक पुकार दे, रे मन होला वैर।
दिल भावे फिर जहँ रहो, जहां जाय तहँ खैर॥
जहां जाय तहँ खैर जबाँमें होवै शीरी।
इसके तुल्य न करामात ना है कोई पीरी॥
कह गिरिधर कविराय तोड भ्रम गढका हल्ला।
मन खुदाय बेशक पाक मौला मन अल्ला॥४५१॥
अल्ला लोक पुकार दे, रे मन हो बेफिकर।
विना आपने आपसे, छोड दूसरा जिकर॥
छोड दूसरा जिकर समझकर खुदको मालक।

फारग सबते होय किसीते रख ना तालक ॥
कह गिरिधर कविराय फेर कोई पडे न पल्ला ।
जानेगा काशक्क आपको जब तू अल्ला॥४५२॥
बैठे खूंटी लोहकी, चले तो मूठी पौन ।
कथे तो ब्रह्मज्ञानकी, नहीं तो ह्वै रह मौन ॥
नहीं तो ह्वै रह मौन सन्तकी यह मर्यादा ।
भूँख लगै मँग खाय टूकरा बासी ताजा ॥
कह गिरिधर कविराय विषयसे मनको ऐंठे ।
बाह्यमुखी जन पाय जायकर कबौं न बैठे॥४५३॥
गिरानी हो आरामकी, धावे खण्ड केदार ।
हमना इंद्रिय शिथिलहोय,सुखको कहँ दीदार ॥
सुखको कहँ दीदार और कछु बात न बूझे ।
खाना सोना चलना चतुरथ नाहिंन सूझे ॥
कह गिरिधर कवि तुङ्ग देखकर बुद्धि डेरानी ।
धावे खण्डकेदार अरामकी होय गिरानी ४५४ ॥
माइत अपने आपको, रे मन हो जिस काल ।

मूल सहित भ्रम नष्ट हो, रहै न कोइ जंजाल ॥
रहै न कोइ जंजाल पुरुष निज होस कृतारथ ।
गुरू शास्त्र औ साधन सिगरे भें चरितारथ ॥
कह गिरिधर कविराय भली जब आवै साइत ।
तब पुमानको होय यथारथ खुदकी माइत ४५५॥
क्षति ना जीवन्मुक्तकी, होवत किसी प्रकार ।
कोऊ प्रतिष्ठा करै पुनि, कोउ करै तिरस्कार ॥
कोउ करै तिरस्कार और कोऊ निन्दा कर है ।
कोऊ बैठकर पास बहुतविधि अस्तुति कर है ॥
कह गिरिधर कविराय अविद्या मूला गति ।
अपमान मानके किये कहा ज्ञानीकी क्षति॥४५६॥
प्रतिष्ठा विष्ठा कूकरी, गौरव रौरव नरक ।
अभिमान वारुणी पान है,त्रितय त्याग दे फरक॥
त्रितय त्याग दे फरक निरतिशय सुख सो पावत ।
निःसंशय दीनता नाश हो अस श्रुति गावत ॥
कह गिरिधर कविराय भई तिसकी मति भ्रष्टा ।

गर्व गरूरी करत औ चाहत मान प्रतिष्ठा ॥४५७॥
प्रापतकी प्रापत भई, निःसंशय अपरोष ।
मलिन वासना मिट गई, उपज्यो दृढ सन्तोष ॥
उपज्यो दृढ सन्तोष रही कथनी पुनि करनी ।
ज्ञान कला इक प्रकटी मूल अविद्याहरनी ॥
कह गिरिधर कविराय विद्या प्रत्येक समापति ।
वर्णन ग्रन्थन करें भई प्रापतकी प्रापति ॥४५८॥

इति श्रीकविगिरिधरकृत कुंडलिया
द्वितीयभाग समाप्त ॥ २ ॥

अथ शिक्षा ।

दोहा ।

भेद भ्रम कर्तृत्व भ्रम, पुनि भ्रम संगविकार ।
ब्रह्मोत्तर जग सत्य भ्रम, पांचों भ्रम संसार ॥१॥
बिंब प्रतिबिंबलोहित फटिक, घटाकाशगुण मार ।

कनक कुण्डल दृष्टांत दे, पांचोंभ्रमसुनिवार ॥२॥
अध्यास विपर्यय बहिम पुनि,भ्रमके पर पर्याय ।
तत्त्व ज्ञानके पात ह्वै, दूसर नाहिं उपाय ॥ ३ ॥
तत्त्वमसी महावाक्यते, प्रमा–परोक्ष उदोत ।
अहं ब्रह्म तिस कालमें, नाश विपर्यय होत ॥४॥
विद्या अविद्या
रोहिणीके परकाशते, भई कृत्तिका पात ।
अखण्डाकारवृत्ति विषमता
उदय भई जब कृत्तिका, करी रोहिणीघात ॥५॥
आत्मा अनात्मा अध्यास जीव
मेष मेषके मेषसों, हो रह्यो मकर विशेष ।
ज्ञान जीव अद्वितीयका अद्वितीय
मकर भयो जब मकरको, वही मेषको मेष ॥६॥
विवेक वैराग्य मोह
वृषभ वृषभ युग मिले जब, कीनो सिंह निपात ।
बोध मोह
बहुरि वृषभ उत्पतिभयो, तिन हनकुलसंघात॥७॥

कवित्त–जो कुछ विधाता तेरे लिख्यो है ललाट-
पाट, ताहीपर आप आपनो अमल कर ले ।
सोनेको सुमेर भावे देख वार पार मांझ,
घटै बढै नाहिं यह निश्चय जिय धर ले ॥
देवीदास कहै जोई होनहार सोई ह्वै है,
मनमें विचार रैन दिन अनुसर ले ।
वापी कूप सरिता भरे हैं सात सागर पै,
तू तो निज वासन समान पानी भर ले ॥ १ ॥
हाँसीमें विषाद बसै विद्यामें विवाद बसै,
कायामें मरन गुरु वतनमें हीनता ।
शुचिमें गलानी बसै आपतमें हानि बसैं,
जै–मांझ हार सुन्दरतामें छबि–छीनता ॥
रोग बसै भोगमें संयोगमें वियोग बसै,
गुणमें गरब बसै सेवा माहिं दीनता ।
और जग रीति जेती गर्भित असाता सेती,
साताकी सहेली है अकेली उदासीनता ॥२॥

अथ सप्तभयनिवारणमन्त्र ।

दोहा ।

यह भय भय परलोक भय, मरण वेदना जात ।
अन्यरक्षा अन्य गुप्त भय, अकस्मात भय सात ॥
कवित्त–दश जो परिग्रह वियोग चिंता यह भय,
दुर्गति गमन परलोक भय मानिये ।
प्राणनको हरण मरण भय कहावे सो,
रोग आदि कष्ट यह वेदना बखानिये ॥
रक्षक हमारे कोऊ नाहीं अन्य रक्षा भय,
चौर भय विचार अन्य गुप्त मन आनिये ।
अचिन्त्य जोई आवही अचानक कहाधौं होई,
ऐसो भय अकस्मात जगमें बखानिये ॥ १ ॥

ग्रह भयनिवारणमन्त्र ॥ छप्पय ॥

नखशिख पित परमाण ज्ञान अवगाहि निरक्षत ।
जीव ईस भ्रम फोर लक्षणा लक्षित रक्षित ॥
क्षणभंगुर संसार विभू परवार भार अस ।
जेहिउत्पति तेहि प्रलय जास संयोग वियोग तस॥

परिग्रहप्रपंच प्रगट निरखयहभयउपजे न चित ।
ज्ञानीनिशंकनिकलंकनिजज्ञानरूपनिरखंतनित ॥

परलोकभयनिवारणमन्त्र ॥ छप्पय ।

ज्ञान चख्य मम लोक जास अवलोक मोक्षसुख ।
इतर लोक गम नाहिं आहि जिस माहिं दोष दुख ॥
पुण्य सुगति दातार पाप दुर्गति पद दायक ।
मैं चैतन्य स्वरूप उभय गत उभय न लायक ॥
यहिविधिविचारपरलोकभयनहींव्याप्तवरतेसुचित।
ज्ञानी निशंकनिकलंकनिजज्ञानरूपनिरखंतनित॥

मरणभयनिवारणमन्त्र ॥ छप्पय ।

फरस जीभ जक्क नयन और पुनि श्रवण अक्षइति ।
मन बच तन बलतीन श्वास उश्वास आयु बिति ॥
यह दश प्राण विनाश ताहि जग मरण कहीजै ।
ज्ञान प्राण संयुक्त जीव तेहि काल न छीजै ॥
यहचिंतकरैनहिंमरणभययहप्रमाणमुनिवरकथित।
ज्ञानी निशंकनिकलंक निज ज्ञानरूपनिरखंतनित॥

वेदनाभयनिवारणमन्त्र ॥ छप्पय ।

वेदना वारो जीय जाहि वेदान्त सोऊ जिय ।
यह वेदना अभंग सुनो मम संग नाहिं विय ॥
कर्म वेदना दुविध एक सुखमें द्वितीय दुख ।
दोऊ मोह विकार पुद्गलाकार बहिर्मुख ॥
जब यह विचारमनमेंधरततब निर्वेदनाभयविदित।
ज्ञानी निशंकनिकलंकनिजज्ञानरूपनिरखंतनित ॥

अन्यरक्षाभयनिवारणमन्त्र ॥ छप्पय ।

जो वस्तु सत स्वरूप जगत मय त्रय कालगत ।
तास विनाश न होय सहज निश्चय परवान मित ॥
सो मम आतम वस्तु सर्वदा न सहाय घर ।
तेहि कारण रक्षक नाहिं सुभक्षक नहिं कोऊ पर ॥
जबयहिप्रकारनिर्धारकियोतबअन्यरक्षाभयनशत।
ज्ञानी निशंकनिकलंकनिजज्ञानरूपनिरखंतनित ॥

चौरभयनिवारणमन्त्र ॥ छप्पय ।

परमरूप प्रत्यक्ष जासु लक्षण चिन्मंडित ।
पर प्रवेश तेहि माहिं नाहिं मैं अगम अखंडित ॥

सो मम रूप अनूप अकृत्रिम अमित अटूटधन
ताहि चौर किमि गहैं दौर नहिं लहैं और तन ॥
चितवन्तएवधरध्यानजबतबअगुप्तभयउपशमित ।
ज्ञानीनिशंकनिकलंकनिजज्ञानरूपनिरखंत नित ॥

अकस्मात् भयनिवारणमन्त्र ॥ छप्पय ।

शुद्धबुद्ध अविरुद्ध सहजसम ऋद्धि सिद्धिसम ।
अलख अनादिअनंतअतुलअविचलस्वरूपमम ॥
चिद विलास परकाश रहित विकल्प सुथानक ।
जेहिदुब्धा नहिं कोय होय तेहिकछु अचानक ॥
जबवहविवेकउपजंततबअकस्मातभयनहिंविदित ।
ज्ञानी निशंकनिकलंकनिजज्ञानरूपनिरखंतनित ॥

इति गिरिधरकृत कुण्डलिया समाप्त ।

पुस्तक मिलनेका पता—

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,
बम्बई.

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
'लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर' स्टीम्-प्रेस,
कल्याण-बम्बई.